



MISSION MEDITATION

Established by :

Enlightened Mystic Gurumaiya Dr. Hareshwarideviji

MAUN MANDIR

(A place for silence)

at. & po. Chapad, dist. Vadodara, Gujarat, INDIA

Ph. +91 9913153609, 7285085733



संगीत ध्यान

प्रिय साधको!

ध्यान और संगीत का गहरा संबंध है। मेरी दृष्टि से तो ध्यान आत्मा का संगीत है और संगीत ध्यान का आधार। अगर आप एक संगीत प्रेमी हैं तो संगीत के जरिए ध्यान में उतरना आपके लिए बहुत आसान हो जाएगा। वैसे तो गीत, वाद्य और नृत्य तीनों के मेल को संगीत कहते हैं। परंतु ऐसा भी हो सकता है कि कंठ और वाद्य के आधार पर आप भीतर से झूम रहे हों। ऐसा भी संभव है कि केवल सुरीली आवाज से आपका हृदय नाच उठे और ऐसा भी संभव है कि केवल वाद्यों के आधार पर आपके भीतर के तार झंकृत हो जाएं। इसलिए वाद्य और नृत्य के उपरांत भी यहाँ मैंने एक विशेष ध्यान विधि के रूप में संगीत ध्यान को लिया है।

अनेक प्रकार के संगीत को विविध आवाजों में सुनने के बाद मुझे दो पंक्तियाँ स्फुरित हुईं -

मस्त मधुर मद दर्द भरा, तीव्र शांत षड् कंठ।

संगीतप्रिय जन 'मोहिनी', पान करे आकंठ।।

कुछ आवाजों को सुनकर मस्ती बढ़ती है, किसी कंठ से माधुर्य बरसता है, किसी की आवाज़ मदहोश करती है, किसी की दर्द भरी आवाज़ हमें रुला देती है, कुछ आवाज़ें चिल्ला चिल्लाकर तीव्रतम स्वरों को छेड़कर मनुष्य की विकृतियों को बाहर फेंकती हैं। इस प्रकार का म्यूज़िक पश्चिम में विशेष रूप से मिलता है क्योंकि करीब करीब दो हजार वर्ष तक ईसाईयत ने शारीरिक दमन पर खूब ज़ोर दिया था। परिणाम स्वरूप मनोस्वतंत्रता मिलते ही दबी हुई सारी वासनाएं संगीत के द्वारा प्रगट होने लगीं। कुछ आवाज़ें ऐसी होती हैं कि जिन्हें सुनकर कुछ ही क्षणों में मनुष्य का चित्त निर्विचार होकर शांति में प्रवेश कर लेता है। संगीत के साथ जिसकी चेतना का गहन संबंध जुड़ा हो ऐसे साधक ही इन विविध प्रकार की आवाज़ों का अनुभव कर सकते हैं।

इन छः आवाज़ों को श्रोता अपनी अपनी रुचि के अनुसार मनभर के सुनता है और रससमाधि में प्रवेश कर लेता है।

आज के ज़माने में संगीत ने बहुत विशाल स्वरूप धारण कर लिया है। मेरा अनुभव है कि भीतर और बाहर का विश्व संगीतमय है। कुछ विशेष स्वर जीवप्राणी मात्र के भीतर निरंतर बज रहे हैं। वे भले सुनाई न दें परंतु प्रत्येक व्यक्ति उसका अनुभव कर सकता है। प्रत्येक जीव में कुछ ध्वनियाँ और स्पंदन लगातार उत्पन्न होते रहते हैं। इसी कुदरती संगीत की वजह से बाहरी संगीत भी उसे आकर्षित करता रहा है।

बाहर के संगीत के साथ जब भीतर का संगीत एकरूप होने लगता है तब वह बन जाता है ध्यान।

आप भीतरी संगीत के साथ भी ध्यान में डूब सकते हो। भीतर के स्वरों में उतरना यह सबसे बड़ी उपलब्धी है। जिसे ध्यान शास्त्र दस प्रकार के अनाहत नाद कहते हैं। परंतु वह संगीत इतना सूक्ष्म है कि साधारण मनुष्य के लिए उस विधि में उतरना कठिन हो जाता है। ऐसे ध्यान प्रेमियों के लिए इन्द्रिय गम्य संगीत ज्यादा मदद कर सकता है। इन्द्रियगम्य संगीत के माध्यम से आप इन्द्रियातीत संगीत को प्राप्त कर सकते हैं।

संगीत ध्यान में बाहर का संगीत भीतर के संगीत को केवल स्टार्ट देता है। जैसे कि मोटरगाड़ी तो डीज़ल से ही चलती है परंतु बैटरी के द्वारा सेल्फ लगता है। इसीतरह बाहर का संगीत एक उपकरण का काम करके भीतर की ऊर्जा को सक्रिय कर देता है।

हमारे यहाँ संगीत के प्रमुख दो प्रकार हैं - एक भारतीय संगीत दूसरा पाश्चात्य संगीत। पाश्चात्य संगीत में अनेक शाखा प्रशाखाएं विकसित होती जाती हैं। परंतु भारतीय संगीत ध्यान के लिए जितना उपयोगी है उतना शायद विश्व का अन्य कोई संगीत सहयोग नहीं कर पाएगा।

पाश्चात्य वाद्यों में भी भारतीय संगीत के स्वर खिल उठते हैं। विश्व के विविध संगीतज्ञ नवीनता के नाम पर और प्रयोगवादिता के आधार पर संगीत की भले नई नई असंख्य व्याख्याएं करें परंतु भारतीय संगीत के सात स्वरों से बाहर कुछ भी नहीं है।

भारतीय संगीत के सात स्वर केवल मनुष्य के स्वरों पर आधार रखकर नहीं खोजे गए हैं। परंतु पशु पक्षियों के स्वरों का गहन अभ्यास करने के बाद समग्र प्रकृति में से प्रस्फुटित स्वरों की सूक्ष्मता में प्रवेश करके भारतीय ऋषियों ने सर्व के सार रूप संगीत के सात स्वरों को स्थापित किया है। ये सातों स्वर ध्यान के स्वर बन सकते हैं।

भारतीय संगीत में भी असंख्य शाखा प्रशाखाएं हैं। जैसे शास्त्रीय संगीत, भक्ति संगीत, सुगम संगीत, सूफी संगीत, लोक संगीत, फिल्मी संगीत और प्रादेशिक संगीत। परंतु संगीत का मूल उद्देश्य तो मनुष्य को प्रसन्न, आनंदित, स्वस्थ और सृजनात्मक रखना है।

समग्र प्रकृति संगीतमय है। समग्र प्रकृति में परमात्मा ने कुछ लय, ताल, ध्वनि और स्वरों को भर दिया है। आपने शायद कभी अभ्यास किया हो कि पंछी के उड़ने में, उसकी पंखों की फड़फड़ाहट में एक रिथम है और कुछ स्वर। मछली के पानी में तैरने में एक लय और नृत्य है।

तितलियों के उड़ने में, भंवरे की गुन गुन में, पत्तों के गिरने में, हवा के बहने में, झरनों के गिरने में, नदी के चलने में, तारे के टूटने में और समंदर की लहरों के उठने में गीत, संगीत और नृत्य भरा है।

अगर मुझे कोई प्रश्न करे कि पहले भगवान को चाहेंगे कि संगीत को, तो मैं कहूँगी कि संगीत को। क्योंकि संगीत के बिना भीतर और बाहर के भगवान का अस्तित्व नहीं है। परमात्मा संगीतमय है, आनंदमय है।

संगीत शिव, राम और कृष्ण से भी पुराना है। उन सबने संगीत की आराधना की है, संगीत को विकसित किया है, संगीत की महिमा बढ़ाई है, संगीत के द्वारा ध्यान को उपलब्ध हुए हैं और औरों को ध्यान में ले गए हैं।

विज्ञान ने भी स्वीकार कर लिया है कि संगीत के द्वारा सुखापेड़ खिल सकता है। कृषि ज्यादा उपजाऊ बन सकती है। तो ज़रा सोचिए कि मनुष्य कितना खिल सकता है संगीत के द्वारा!

डेरिफार्मों में गायों से ज्यादा दूध प्राप्त करने के लिए म्यूज़िक थेरापी का उपयोग हो रहा है। परंतु इसके साथ में सहमत नहीं हूँ क्योंकि वह मनुष्य मन की चालाकी है, वह एक अंधा स्वार्थ है, ऐसा करना यह पशु का शोषण है। गाय के दूध पर सबसे पहला और ज्यादा अधिकार उसके बछड़े का है। बछड़े के तृप्त होने के बाद यदि दूध बच रहा है और वह दूध मनुष्य के काम में आ जाता है तो ठीक है। बाकी गाय अपने ज्यादा से ज्यादा दूध छोड़ने में सहयोग करे इसलिए शुरुआत में बछड़े को माता का दूध पीने दिया जाए और फिर मनुष्य या मशीनों के द्वारा गाय का दूध पैसे बनाने के लिए दवाई या विविध थेरापियों के द्वारा खींच लिया जाए, यह तो अमानवीय कृत्य है।

हाँ, पशु अगर संगीत से खुश रह सकता है, स्वस्थ रह सकता है, और आप एक पशु प्रेमी हैं, पशु पालक हैं और आप उन पशुओं के लिए प्रेम के वश होकर संगीत का उपयोग करो तब वह आपका सच्चा पशुप्रेम है।

ऐसा कार्य श्रीकृष्ण ने किया था। कृष्ण ने संगीत का राज जान लिया था। स्वर्णों के चमत्कारों का अनुभव कर लिया था।

अनुभव के आधार पर मैं कह सकती हूँ कि जो प्रसन्न है वही दूसरों को प्रसन्नता दे सकता है। जो शांत है वही दूसरों को शांति दे सकता है। जो आनंदित है वही आनंद बाँट सकता है। वैसे ही जो ध्यान में उतरा है वही दूसरों को ध्यान में उतरने के लिए सहायता कर सकता है। जो स्वयं समाधिस्थ हो सकता है वह दूसरों को समाधिस्थ होने में मदद कर सकता है।

बांसुरी के द्वारा कृष्ण ने पहले खुद ने ही शांति और आनंद का अनुभव लिया। उसके स्वर्णों में डूबकर वह समाधिस्थ हुए कृष्ण की समाधि का राज ही था बांसुरी के स्वर। अनेक बार आपने पढ़ा होगा कृष्ण की कथाओं में कि वह गाय चराना और माँ के द्वारा सौँपी हुई छोटी मोटी अन्य जिम्मेदारियाँ छोड़कर सबकुछ भूलकर यमुना के तट पर या वटवृक्ष की छाँव में, या कदम वृक्ष की डाली पर बैठकर बाँसुरी छेड़ने लगते थे कृष्ण। स्वर और नाद के साथ श्रीकृष्ण ब्रह्मनाद में विलीन हो जाते थे।

मेरा अंदाज है कि स्वर्णों के द्वारा पाई हुई इस समाधिस्थ अवस्था में से ही कृष्ण का ज्ञान निष्पन्न हुआ था और उसी स्वर समाधि में से ही भगवद गीता का जन्म हुआ है। समाधिस्थ पुरुष ही गीता गा सकता है। साधारण विद्वान के हृदय में से ऐसा अद्भुत ज्ञान के गीत का बहना असंभव है।

पुराण कहता है कि श्रीकृष्ण जब बांसुरी छेड़ते थे तब पंछी चहचहाना बंद कर देते थे, गैयाँ शांत होकर कृष्ण के इर्द गिर्द बैठ जाती थीं। संभव है कि अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग भी हो सकता है पुराण में। परंतु वर्णन करने वालों ने लिखा है कि बांसुरी के स्वर्णों को सुनने के लिए यमुना का प्रवाह भी अपने ध्वनि को शांत कर देता था, मोर नाचने लगते थे, गोपियाँ स्वर्णों को सुनकर भावसमाधि में खो जाती थीं। सुध बुध खोकर वे स्तब्ध हो जाती थीं, बांसुरी के स्वर्णों पर ध्यान करने के लिए।

साधारण कथा-वार्ताकार शायद इस सारी बातों को प्रेम लक्षणा भक्ति के नाम से समझाएगा परंतु वास्तव में वह एक गोपियों का संगीत ध्यान था। स्वाभाविक है कि ध्यान में बाहरी विश्व का बोध नहीं रहता। असंख्य कविताओं में मैंने पढ़ा है कि गोपियन के द्वारा चूल्हे पर रखा हुआ दूध उफन कर जल जाता था, गोपिया कपड़े उल्टे सीधे पहन लेती थीं, आंखों का काजल गाल पर लगा देती थीं, बछड़े की जगह खूंटें पर बच्चों को बांध देती थीं। ऐसी घटना किसी भी नारी के साथ घटेगी तो लोग उसे पागल ही कहेंगे।

परंतु मैं कहूँगी कि ध्यानमुग्धता में सांसारिक जिम्मेदारियाँ एक बंधन लगता है। और जब कर्तव्य निभाने के लिए उन जिम्मेदारियों का निर्वाह करना पड़ता है तब ऐसी गड़बड़ होना स्वाभाविक है।

वैसे भी नारी का हृदय बहुत संवेदनशील होता है। नारी का स्वीकारभाव अजोड़ होता है। एक बार जब वह ध्यान में उतरने लगती है तो फिर वहाँ से वापस लौटना उसके लिए मुश्किल बन जाता है। उसका समर्पण पूरा पूरा होता है। और इसका उत्तम उदाहरण है व्रज की गोपियाँ।

व्रज की गोपियों ने अल्पमहद अंश से योग में प्रवेश कर लिया था। ध्यान शास्त्र कहता है कि अति आनंद, रोमांच, अश्रु, जल्पन, और भ्रमण ये योगी के लक्षण हैं। गोपियों की स्थिति ऐसी ही थी।

कृष्ण के विदा होने के समय गोपियों का रोना, फिफियाना, मूर्छित होना ये सब मोह नहीं था परंतु ध्यानभाव में समावेश थी। अनपढ़ और भोली गोपियों के पास ध्यान की कोई विशेष विधियाँ ज्ञान, गुरु या माहौल नहीं था। उनके लिए तो उनका सर्वस्व जिसे स्वामी कहो, गुरु कहो, ध्यानी कहो, ज्ञानी कहो या रक्षक कहो; एक ही था और वह थे श्रीकृष्ण। और कृष्ण को सर्वस्व मानने का राज था उसकी बांसुरी के स्वर।

शायद आज तक गोपियाँ और कृष्ण, नृत्य और बांसुरी को ज्यादातर लोगों ने केवल श्रृंगार भाव से ही देखा है परंतु ऐसा देखने वाला नासमझ है, आध्यात्मिक रूप से अपरिपक्व है।

व्रज में जो कुछ आनंद, मस्ती, प्रसन्नता घट रही थी। जो भी समस्वरता थी, जो प्रेम और संगठन था, लोगों के बीच में जो उदारता और सहयोग की भावना थी उसका एक ही कारण था; संगीत ध्यान और नृत्य ध्यान।

कृष्ण ने पूरे व्रज को ध्यानी बना दिया था। शास्त्रों में असंख्य बार उल्लेख है कि बांसुरे के स्वरों से सबको ध्यान लग जाता था।

वेद व्यास रचित श्रीमद् भागवत को अकस्मात् से भक्तिमार्ग के ग्रंथों में समावेश हो गया परंतु याद रहे कि भक्ति ध्यान से विपरीत नहीं है। वह तो ध्यान की परिपूरक है। भक्ति तो प्रथम सीढ़ी है। भक्ति के बिना ध्यान में प्रवेश ही नहीं हो पाएगा। जिस हृदय में प्रेम नहीं है। वह हृदय ध्यान के लिए असफल जाएगा।

भागवत को भक्ति मार्ग के ग्रंथ के रूप में स्वीकार कर लेने की वजह से ग्वाल, बाल कृष्ण और गोपियों के प्रेम को कृष्ण के नटखट बाल चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया है। परंतु पहुंचे हुए विद्वान इस बात का स्वीकार करते हैं कि वेद व्यास की भाषा एक समाधि भाषा है – ध्यान समाधि का मूल आधार है।

एक अर्थ में पूरा व्रज ध्यान प्रेमी था। मैं बार बार कहती हूँ कि सरल चित्त और सहृदय मनुष्य का ध्यान में जल्दी प्रवेश हो सकता है।

कृष्ण ने पूरे व्रज की मानसिकता का अभ्यास कर लिया था। उन भोले भाले लोगों को शास्त्रों से भारी भरकम शब्दों से, अटपटी विधियों से ध्यान में ले जाना संभव नहीं था। वे सब तो प्रकृति की गोद में खेलने वाले लोग थे। वैसे भी उनके पास कोई स्थापित ग्राम या नगरों की व्यवस्था नहीं थी। इसका एक अर्थ यह हुआ कि उन लोगों की कहीं गहन आसक्ति जुड़ी हुई नहीं थी।

स्वयं को अस्तित्व पर छोड़कर प्रकृति के बदलते रंगों के साथ, बदलती परिस्थितियों के साथ जीवन निर्वाह के साधन रूप पशु और कुछ मूलभूत आवश्यकता से संलग्न चीजों को लेकर स्थानान्तर करते रहते थे। नाच नाच कर आनंद मनाना ये उनका स्वभाव था। श्रीकृष्ण ने उसके नृत्य को स्वरों से भर दिया।

बांसुरी के स्वरों में स्वयं समाधिस्थ होने के बाद श्रीकृष्ण ने सबको स्वर ज्ञान करा दिया था बांसुरी बजा बजा कर। यहाँ स्वरज्ञान का अर्थ शास्त्रीयता से मत जोड़ना। यहाँ मैं स्वरज्ञान का अर्थ मैं कर रही हूँ स्वरों में खोकर ध्यानस्थ हो जाना। धीरे धीरे बांसुरी का संगीत व्रज के लिए ध्यान का आधार बन गया था। कृष्ण के पीछे सब पागल थे, इसका मूल रहस्य स्वरज्ञान में छिपा था।

शांति कौन नहीं चाहता ? आनंद और मस्ती को कौन नहीं चाहता ? खुश होने की लाख कोशिशें करने के बावजूद भी मनुष्य मस्ती और शांति में नहीं डूब सकता। और कृष्ण ने बच्चे बूढ़े नर नारी सबको बांसुरी के माध्यम से ध्यान में उतरना सबज प्राप्य कर दिया था।

कौन चाहता है कि अपनी खुशी लुट जाए ! कौन चाहेगा उसकी शांति और मस्ती को लुटा देना ! आनंद ही तो परमात्मा है। जब कृष्ण विदा ले रहे थे तब वास्तव में पूरे व्रज की शांति और आनंद विदा ले रहे थे। क्योंकि बांसुरी के स्वर सबके लिए ध्यान का आधार था। ध्यान का माध्यम था। उन लोगों के लिए बांसुरी अनिवार्य बन गई थी ध्यान में उतरने के लिए। कृष्ण जैसी बांसुरी व्रज में और कोई नहीं बजा सकता था। ध्यान में जाने के लिए उन लोगों के पास बांसुरी के स्वरों के सिवाय और कोई आधार नहीं था।

एक अर्थ में कृष्ण की विदा के साथ पूरे व्रज के आनंद, शांति, मस्ती और ध्यान को छीना जा रहा था। ऐसे आध्यात्मिक सदमे को कोई साधक कैसे झेल पाएगा अगर कोई सिद्ध होता तो बात अलग होती ? व्रज ध्यानयात्रा में था, अभी सिद्ध नहीं हो गए थे। ध्यान के गर्भ में, कृष्ण के सानिध्य में सब विकसित हो रहे थे। अक्रूर जब कृष्ण को लेने आए तब व्रज के ध्यान की सूक्ष्मरूप से भ्रूण हत्या हो रही थी।

साधारण मनुष्य के पास से उसके सुख को छीन लेंगे तो वह आक्रमण करेगा, लड़ने लगेगा परंतु ध्यान प्रेमी के पास से ध्यान छीन लेंगे तो वह केवल आंसु बहाएगा या मूर्छित होगा। व्रज के रूदन का यही रहस्य था। कृष्ण की विदाई के बाद व्रज में कोई रास घटित नहीं हुआ, कोई संगीत नहीं बजा व्रज का ध्यान टूट गया, यात्रा अधूरी छूट गई। ध्यान का विरह प्रेम विरह से कोई कम नहीं होता। सहृदय ध्यानी ही मेरी बात को समझ पाएगा।

दिल के टूटने से ज्यादा खतरनाक ध्यान का टूटना है। किसी के ध्यान को तोड़ना यह एक आध्यात्मिक अपराध है। इसीलिए तो गोपियाँ अक्रूर को ताना मारती हैं कि इसका नाम अक्रूर किसने रखा ? इसका नाम तो क्रूर होना चाहिए। यह व्यंग्य समझने जैसा है।

कृष्ण की विदाई के समय व्रज की स्थिति एक अपरिपक्व साधक जैसी थी। व्रज ने ध्यान का आनंद तो लिया परंतु शिष्य अभी ध्यान में

स्थिर नहीं हुआ है और एक समर्पित और निरअपराध शिष्य को गुरु अचानक छोड़कर चले जाए तो क्या परिस्थिति होगी एक ध्यानी शिष्य की ?
प्यारे साधको !

अब शायद आप समझ पाए होंगे कि संगीत की महिमा कितनी है। किसी भी शास्त्र कोई भी पांडित्य, किसी भी कठिन विधि विधान, या विशेष बौद्धिकता या शाब्दिक अर्थभार के बिना सहजता से ध्यान में उतरने का कोई माध्यम है तो यह है संगीत। और वह साधक को शीघ्र ही ध्यान की उच्चतम भूमिका ऊपर पहुंचा सकता है।

संगीत के माध्यम से कृष्ण ने पूरे ब्रज की ऊर्जा को एक नई दिशा दी थी, एक आध्यात्मिक मार्ग पर सहजता से सबको चलना सिखाया था।

मेरी बताई हुई ध्यान विधियों में से करीब डेढ़सौ विधियाँ ऐसी हैं जिनमें संगीत की भूमिका ध्यान की पृष्ठभूमिका के रूप में रही।

मैं कहती हूँ कि जब तक संगीत है तब तक ध्यान है और जब तक ध्यान है तब तक संगीत है। उच्चतम ध्यान मग्नता में से उत्तम प्रकार का संगीत जन्म लेता है और उत्तम संगीत, ध्यान मग्न होने में बड़ा सहयोग कर सकता है।

विश्व में से जब संगीत खो जाएगा तब यह विश्व कब्रस्तान से ज्यादा कुछ भी नहीं रहेगा।

विश्वकर्मा पुराण में एक बड़ी प्यारी कथा है। ब्रह्मा ने सृष्टि उत्पन्न तो की, परंतु वह गूंगी थी। स्वर और शब्दहीन सृष्टि सुंदर होने पर भी ब्रह्मा को स्मशान जैसी लग रही थी। सृष्टि को गूंगी देखकर ब्रह्मा व्याकुल हो गए, उदास हो गए। अंत में दुखी ब्रह्मा ने सरस्वती की आराधना की। उनसे कहा कि हे महाशक्ति! तू मेरी सृष्टि को स्वर, ताल और ध्वनियों से भर दे। ताकि मेरा सृजन सार्थक बने। तब सरस्वती ने प्रसन्न होकर वीणा बजाई और उनके स्वरों से सारी सृष्टि स्वर-ताल मय हो गई। उस दिन ऋतुराज वसंत का जन्म हुआ। उस दिन को भारत सरस्वती प्रागट्य दिन और वसंत पंचमी के नाम से मनाता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि देवताओं ने भी स्वरों का स्वागत किया है। संगीत ने सृष्टि में प्राण फूँके हैं। जिस दिन सृष्टि में स्पंदनों का जन्म हुआ, उस दिन से आज तक उसे वसंत पंचमी नाम से एक उत्सव मनाया जाता है।

शिव तंत्र तो कहता है कि पराशक्ति की स्पंदन शक्ति ही जीव प्राणी मात्र को स्पंदित रखती है, जीवंत रखती है। और योगी जन उसी स्पंदन शक्ति की आराधना करते हैं। यह स्पंदन शक्ति ईश्वरीय गूढ़ शक्ति नहीं तो और क्या है ?

प्यारे साधको !

वैसे तो हजार हजार प्रकार के संगीत हैं। संगीत में प्रतिदिन कुछ न कुछ नई खोज होती रहती है क्योंकि वह एक अंतहीन प्रक्रिया है। फिर भी ध्यान को लक्ष्य में रखकर बात करें तो आज के संगीत को हम तीन विभागों में बांट सकते हैं – उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ।

जो संगीत मनुष्य को ध्यान की अनुभूति करा दे वह उत्तम है। फिर वह भले भक्ति संगीत हो, फिल्मी संगीत हो, शास्त्रीय संगीत हो या सूफी संगीत हो। आपका चित्त जिसे सुनकर शांत स्थिर और निर्विचार होकर आनंद में डूब जाए, तब उसे उत्तम संगीत समझ लेना।

वह फिर भीमसेन जोशी, जसराज पंडित और परवीन सुल्ताना का गाया हुआ कोई राग हो तो भी ठीक है, अहमद और मोहमद हुसेन के गाये हुए श्रद्धा केसेट में सूर और तुलसी के भजन हों तो भी ठीक है, महेदी साहब और आबीदा की गज़लें हों तो भी ठीक हैं अथवा दिल्ली सिक्स फिल्म का मौला मौला मौला मेरे मौला; जोधा अकबर का ख्वाजा मेरे ख्वाजा या ए.आर. रहेमान के संगीत भरा चल छैया छैया हो तो भी ठीक है।

मध्यम प्रकार का संगीत किसी भी प्रकार की रहस्यता का अनुभव नहीं करा सकता। वह आपको गूढ़ विश्व में नहीं ले जा सकता परंतु लौकिक स्तर पर मनुष्य के साथ सुख दुख की बातें कर सकता है। वह मनुष्य की तन्हाई दूर कर सकता है। ऐसा संगीत मनुष्य को घड़ीभर सुकून या आश्वासन दे सकता है, वह मनुष्य के जले हुए हृदय का मरहम बन सकता है, ऐसा संगीत मनुष्य के साथ कुछ सवाल जवाब कर सकता है, मनुष्य को कुछ खास बात सोचने के लिए प्रेरित करता है, वह मनुष्य के दिल को मना लेता है, समझौता करना सिखा देता है तथा मिलन और विरह की अभिव्यक्तियाँ करता है। रफ़ी साहब, किशोर दा और मुकेश जी के ज्यादातर गायन इस श्रेणी में आ सकते हैं। आजकल एक विशेष प्रकार के संगीत की लहर चली है। जिस संगीत में दुनियांदारी और अलौकिकता दोनों का अहसास मनुष्य अपनी अपनी उड़ान के अनुसार कर सकता है। उनमें से कुछ गीतों के शब्द लौकिक लगते हैं परंतु इशारा किसी अदृष्ट के प्रति होता है। ऐसे गीतों में से लौकिक और आध्यात्मिक दोनों रसों की निष्पत्ति होती है। ऐसे संगीत में राहत फतेह अली, के.के., रिचा, कविता सेठ, हरिहरन, सुखविंदर सिंह, एस.पी. बालासुब्रमण्यम, यशुदास, राकेश पंडित और कैलाश खेर के कंठ में गाए हुए काफी गीतों का समावेश हो सकता है। सुरीला और मधुरस्वरयुक्त और गायक की आवाज में कशिश वाले संगीत पर ध्यान करके मनुष्य अपने जीवन को सुरीलेपन से भर सकता है।

कनिष्ठ प्रकार का संगीत मनुष्य को विकृत कर देता है। ऐसे संगीत से समझदार आदमी को दूर रहना चाहिए। आज के युवक युवतियाँ नाचने के लिए कोई ना कोई बहाना ढूँढते रहते हैं। मौका मिलते ही वे नाचने लगते हैं। आज की युवा पीढ़ी उत्सव मनाने में प्रतिपल उत्सुक रहते हैं। नृत्य, संगीत और जोबन करीब करीब आज की पीढ़ी का पर्याय बन गया है। और यह लक्षण बहुत शुभ है। जो संगीत और नृत्य से निकट है ऐसे मनुष्य का ध्यान में बहुत जल्दी प्रवेश हो सकता है। परंतु उन्हें एक बात के लिए सजग रहना पड़ेगा कि आपके कान कोई गटर नहीं है कि जिसमें संगीत के नाम पर कोई कुछ भी उंडेल दे। संगीत वास्तव में संगीत होना चाहिए। कर्कश आवाज़, द्विअर्थी शब्द, अश्लील अभिव्यक्ति और नंगा नाच, संगीत नहीं है।

संगीत आत्मसंमोहन का काम करता है। यहाँ मुझे एक संगीतज्ञ के जीवन की एक घटना याद आ रही है। मेवाती घराने के पंडित जसराज जी के किसी शिष्यको पैर में कोई तकलीफ हुई। उसको ठीक करने के लिए छोटे से ऑपरेशन की जरूरत थी। पेशन्ट संगीत को समर्पित था परंतु डायाबिटीज़ से पीड़ित था। डॉ. एनेस्थेसिया देते हुए घबराते थे। पेशन्ट डॉक्टरों की उलझन को समझ गया। उसने कहा मेरे घर से तानपुरा मंगा दो, तानपुरा मंगवाया गया। पेशन्ट ने राग तोड़ी गाना शुरू किया। आधे घंटे के बाद उसने डॉक्टरों को कहा कि अब आप ऑपरेशन शुरू करो, मुझे अगर कोई भी नुकसान हुआ तो जिम्मेदार मैं रहूँगा ऐसा कहकर स्टेम्प पेपर पर अपना स्टेटमेंट लिख दिया। डॉक्टरों ने सर्जरी शुरू की और वह कलाकार किसी भी पीड़ा की शिकायत के बिना राग के स्वरों में लीन रहा। ये है संगीत का चमत्कार! तानसेन और बैजू के संबंध में तो आपने सुना ही होगा, जब तानसेन जी तोड़ी राग गाना शुरू करते थे तब जंगल में से हिरन जैसा भावुक, भयभीत और चंचल प्राणी सभा में दौड़ आते थे और हिरनों के गले में पुष्प मालाएं पहनाई जा सकती थीं। यह है संगीत का असर। तोड़ी में गाया हुआ लता जी का -

**रैना बीति जाए, शाम न आए,
निंदिया ना आए, रैना बीति जाए**

आठ मात्रा के कहरवा में गाया हुआ यह गीत हमको कहीं दूर खींच ले जाता है। वाणी जयराम का गाया हुआ
**ऐरी मैं तो प्रेम दिवानी,
मेरा दर्द ना जाने कोई...**

जिसे पंडित रविशंकर ने स्वरबद्ध किया था, वह अमर हो गया है।
बोले रे पपीहरा पपीहरा

भी वाणी जयराम का गाया गीत है। जिसे कुछ अमर कृतियों में गिन सकते हैं।

संगीत के रागों में ये क्षमता है कि मनुष्य को सम्मोहित करके निर्विकल्प अवस्था में पहुंचा देते हैं। वह मनुष्य के ज्ञान तंतुओं के साथ सीधा काम करता है। अर्थात् मस्तिष्क को प्रभावित कर देता है। मस्तिष्क का संपर्क शरीर के प्रत्येक हिस्से के साथ व्यापक रूप में है। संगीत के प्रभाव से शरीर के अंग अंग एक ताजगी का अनुभव करते हैं। शरीर की अंतःस्त्रावी ग्रंथियाँ उत्तम संगीत के द्वारा विशिष्ट रूप से सक्रिय होकर उत्तम स्वास्थ्य को प्रदान करती हैं। हमारे संगीत के आचार्यों ने मनुष्य के कल्याण के लिए और संगीत के द्वारा मनुष्य को ध्यान में ले जाने के लिए कौन से समय पर कौन सा राग सुनना चाहिए वह शास्त्र भी विस्तार से बताया है। हिंडोल, गुणकली, भैरवी, रामकली आदि राग ब्रह्ममूर्हर्त के राग हैं। भक्ति और श्रृंगार दोनों में इन रागों का प्रयोग होता है। अलहैया बिलावल, आसावई, जौनपुरी, भैरव, विभास आदि राग प्रातःकाल से लेकर सुबह दस बजे तक गाने का विधान बताया है। मेघ मल्हार, सुर मल्हार और सारंग रात्रि के दूसरे प्रहर के राग हैं। काफी मधुवंती मुल्तानी ये मध्य रात्रि के राग हैं। पटमंजरी रागेश्वरी, और पूर्याधनाश्री प्रातः से लेकर सांयकाल तक कभी भी सुन सकते हैं। राग दरबारी अत्यंत गंभीर प्रकृति का राग है। इसे मध्यरात्रि का राग माना गया है। मानसिक तनावग्रस्त व्यक्तियों का अकसर इस राग से इलाज होता है। राजा महाराज इस राग को ज्यादा पसंद करते थे। रात्रि के अंतिम प्रहर में राग ललित गाया जाता है जो एक अति मधुर राग है। मालकौंस और भोपाली जैसे राग रात्रि के प्रथम प्रहर में गाए जाते हैं। इन सब बातों के पीछे स्वरों का विशेष असर और सूक्ष्म ध्वनियों का विज्ञान काम करता है।

प्यारे साधको!

ये सारी बातें सुनकर ऐसा मत समझना कि जिस मनुष्य को राग ज्ञान नहीं है उसके लिए संगीत नहीं है। राग और स्वरों का ज्ञान होना ये एक बात है, वह एक शास्त्रीय अध्ययन की बात है। और संगीत के प्रति प्रेम होना यह एक इश्वरीय वरदान है। राग बाद में बने हैं। पहले मनुष्य का हृदय और भाव बने हैं। आपको रागों का ज्ञान नहीं है ऐसा मानकर संगीत से दूर मत भागना। आपके हृदय में संगीत के प्रति प्रेम होना ही काफी है। वह प्रेम ही रागों की गहराई को समझने लगेगा। वह प्रेम ही स्वरों में डूबने लगेगा और वह प्रेम ही राग के द्वारा आपको ध्यानस्थ होने में सफलता दिलाएगा।

परंतु यहाँ मुझे शास्त्रीय रागों के बारे में ज्यादा बातें नहीं करनी हैं। मेरा हेतु संगीत के द्वारा आपको ध्यान में ले जाने का है। और अक्सर सभी राग मनुष्य को ध्यानस्थ करने की क्षमता रखते हैं। इसलिए थोड़ा उल्लेख कर दिया। मेरे संगीत शिक्षक माणिकलाल पड़िया जो जूनागढ़ में रहते थे, वे बार बार कहा करते थे कि कोई भी डिप्रेशन का पेशेंट हो तो उसे संगीत में बिठा दो, उसका तनाव चला जाएगा। मैं कहती हूँ कि डिप्रेशन में जाने के बाद संगीत नहीं सुनना है, पहले से ही आपकी जीवन चर्या में संगीत को इस तरह से स्थान दो कि वह संगीत आपमें ध्यान को जन्म देता रहे। वह ध्यान आपको सजग करता रहे। और आपकी सजगता तनाव के सामने एक ढाल बन जाए। ताकी तनावग्रस्त होने का प्रश्न ही खड़ा न हो।

प्यारे साधको!

विश्व का युवान गन के स्थान पर जब हाथ में गिटार उठा लेगा और गोलियों की घनघनाहट को भूलकर गाना गाने लगे। तब तीसरे विश्वयुद्ध की कोई संभावना नहीं बचेगी।

विश्व का मनुष्य जब संगीत को अपने अंग की भांति स्वीकार कर लेगा तब ध्यान के लिए ज्यादा बोलना नहीं पड़ेगा। ध्यानी आत्माओं की काफी ऊर्जा बच जाएगी। संगीत सहजता से ध्यान को उपलब्ध करा देगा। संगीत में जब मनुष्य की आत्मा तल्लीन हो जाएगी तब संगीत समाधि बन जाएगा। मन अदृश्य हो जाएगा और अपने भीतर ही परब्रह्म की प्रतीति हो जाएगी।

धरणा - ६२

कोकिलास्वर ध्यान

प्रिय साधको!

संगीत के स्वरों में पंचम स्वर एक महत्वपूर्ण स्वर है। उसका रंग लाल माना है। लाल रंग का एक विशेष प्रभाव है। वह शक्ति का रंग है। इस अर्थ में पंचम स्वर एक बहुत शक्तिशाली स्वर है। और कुदरत ने कोयल की आवाज को पंचम स्वर से संवारा है। कोयल के स्वर में एक अद्भुत मिठास, आकर्षण, सुरीलापन एवं स्थिरता होती है। उसके प्रत्येक टहूके में अद्भुत बैलेंस होता है, एकसूत्रता होती है। स्वर के बैलेंस की इस एकसूत्रता में आपका चित्त पिरोकर आप ध्यानस्थ हो सकते हैं।

अगर मनुष्य चाहे तो समग्र प्रकृति ध्यान के लिए अनेक प्रकार से सहयोग करने के लिए तत्पर है। परंतु प्रकृति को मनुष्य अनसुना और अनदेखा कर देता है।

मस्तिष्क के कोषों को विकृत रूप से उत्तेजित करने वाला संगीत आज का मनुष्य पैसा खर्च करके भी सुन रहा है परंतु कुदरत के दरबार में जो सहज प्राप्य कर्ण प्रिय और कल्याणकारी संगीत है उसे सुनना चूक जाता है।

उत्तम संगीत मनुष्य के भीतर की शांति और आनंद को बाहर लाता है और विकसित करता है। जबकि रॉक म्यूजिक और जॉज म्यूजिक उसके भीतर पड़े हुए विकारों को बाहर लाता है। कोई भी संगीत गलत नहीं है। मनुष्य की पसंद में गलती हो सकती है। गलत है अजाग्रत पसंद, गलत है शांति से दूर जाना।

प्रत्येक ऋतु में विविध पक्षियों का विशेष कलरव अगर मनुष्य चाहे तो प्रकृति से थोड़ा करीब जाकर किसी भी यांत्रिक उपकरण के बिना भी सुन सकता है। प्रकृति के पास एक कुदरती म्यूजिक सिस्टम है। जो विविध प्रकार के अद्भुत ताल, लय और संगीत से पूर्ण है।

वसंत और ग्रीष्म में तो कोयल के कंठ का पंचम स्वर मनुष्य के मस्तिष्क को कड़ी धूप में भी सुकून देता है और वर्षा में मयूर का केकारव और नृत्य आपको निर्विचार स्थिति तक पहुंचा सकता है।

पंचम संगीत के सात स्वरों में से ऊपर के स्वरों की ओर विकसित होने का मुख्य आधार है। वैसे तो रागों में मध्यम और पंचम दोनों स्वरों की अजोड़ महिमा है संगीत शास्त्र में। मध्यम और पंचम दोनों में से एक स्वर तो प्रत्येक राग में अवश्य होता है।

यहाँ मैं जो ध्यान विधि देने जा रही हूँ यह है कोकिलास्वर ध्यान। इसमें आपको कुछ विशेष नहीं करना है। अगर आपके घर के आंगन में एक दो घने वृक्ष हैं तो पक्षियों की सुविधा तो अपने आप हो जाएगी।

रात के वक्त आपको ऐसे स्थान पर सोना है कि भोर में कोयल की आवाज आपके कानों तक पहुंच सके। अगर मनुष्य चाहे तो पंछी के द्वारा भी जाग सकता है। पंछी आपको दोनों प्रकार से जगा सकते हैं। आप चाहें तो कोयल की मीठी आवाज के साथ नींद में से जाग सकते हैं। वह एक ऐसा अलार्म है कि जिसे आप बंद नहीं कर पाएंगे और उसे सेट भी नहीं करना पड़ेगा। इसी कोयल के स्वर के द्वारा आप ध्यानस्थ होकर

जन्म जन्म की नौद में से भी जाग सकते हैं।

अगर आपके आंगन में वृक्ष या छोटी सी बगिया नहीं है तो प्रातः काल में किसी निकट के बाग बगीचे में चले जाओ। बैठ जाओ वृक्ष के सानिध्य में। वहाँ कोयल का पंचम स्वर आपको ध्यान के लिए निमंत्रण दे रहा है।

अगर आप एक संगीत प्रेमी और प्रकृति प्रेमी मनुष्य का समन्वय हैं तो यह ध्यान आपका विशेष सहयोग कर पाएगा। आपका पक्षीप्रेम आपके ध्यान मार्ग को सरल बना देगा। बैठ जाओ वृक्ष के नीचे कोयल की कूह कूह को सुनते रहो।

आपकी चेतना को पूर्ण रूप से केन्द्रित करो उस लयबद्ध बहते हुए पंचम स्वर में। उस स्वर के प्रति तल्लीन हो जाओ। धीरे धीरे किस पक्षी की आवाज है इस बात का विस्मरण हो जाएगा। आपको कोयल के प्रति सजग नहीं रहना है, सिर्फ स्वर के प्रति सजग रहो। स्वर के साथ मिल जाओ, स्वरमय बन जाओ, आनंदित होने लगे।

कोयल की प्रथम कूह के साथ ही स्वर में ध्यानस्थ होने का प्रयास करो और प्रारंभ में प्रतीक्षा करो दूसरी पुकार के लिए ... फिर तीसरी ... चौथी ...। यह ध्यान का प्रथम सोपान हुआ। द्वितीय सोपान में दो पुकारों के बीच के विराम में स्थिर हो जाओ। फिर शब्द के लिए, कूह ... कूह ... ध्वनि की प्रतीक्षा के लिए प्रयास नहीं रहेगा। दो स्वरों के मध्य में ही स्थिर हो जाओ। जब आपकी समग्र चेतना दो स्वरों के मध्य में स्थिर होगी तब प्रथम और द्वितीय दोनो कूह .. कूह .. से एक स्वर वर्तुल बनेगा।

पंचम स्वर का लयबद्ध बनता हुआ यह वर्तुल धीरे धीरे आपको घेर लेगा। ध्यान विकसित होते ही वह स्वर वर्तुल परिधि में होगा और केन्द्र में से आप (व्यक्ति) हटते जाएंगे और शांति विकसित होती जाएगी। वही परमात्मा की हाजरी होने के आसार हैं। मन निर्विकल्प होता जाएगा।

तीसरे सोपान में माहौल में कोकिला का शब्द कूजित हो रहा हो या ना हो रहा हो परंतु आपके लिए कोई फर्क नहीं पड़ेगा। अगर कोयल का स्वरोच्चार हो रहा है तो एक से दूसरे स्वर तक का जो वर्तुल बनता रहेगा वो आनंद बढ़ाता जाएगा। अगर स्वरोच्चार नहीं हो रहा है तो केवल शांति और प्रसन्नता की मौजूदगी रहेगी।

दोनों स्थिति में शांति का अनुभव अखंड रहेगा। स्वर के शांत हो जाने के बाद भी आपकी शांति अक्षुण्ण रही और आप स्वर समाधि में विलीन हो गए तो समझना कि आपका ध्यान परिपूर्ण हो गया। इस अवस्था में बाहर के स्वर का तिरोभाव हो जाएगा और भीतर के स्वर झंकृत होने लगेंगे। अगर ऐसा हुआ तो समझ लेना कि आपका ध्यान सध गया।

ध्यान का एक नियम है कि उसकी प्रारंभिक अवस्था में साधारण चित्त को किसी अवलंबन की आवश्यकता रहती है। किसी आधार की आवश्यकता रहती है। ध्यान की मध्यम अवस्था में आलंबन गौण हो जाता है और ध्यान स्थिर होता जाता है।

ऐसी अवस्था में आलंबन सर्वस्व नहीं होगा परंतु आलंबन के आधार पर साधक की आध्यात्मिक क्षमता धीरे धीरे विकसित होकर अपने बल पर खड़ा रहना सीखती है।

ध्यान की तीसरी अवस्था में कोई आलंबन नहीं रहता। वहाँ साधक ही अदृश्य हो जाता है। जब साधना करने वाला ही अदृश्य हो गया तो आधार निरर्थक हो जाएगा। साधक ही नहीं रहा तो साधना के आधार और साधन भी नहीं रहे।

क्योंकि साधना तो एक प्रक्रिया है, एक आध्यात्मिक पुरुषार्थ है यात्रा है। साधना एक सजग आयास प्रयास है। जब तक आयास प्रयास है, जब तक कुछ करना पड़ता है, या करना आवश्यक लगता है तब तक साधना का अस्तित्व है। जब ध्यान में साधक अदृश्य हो जाता है तब साधना साध्य में रूपांतरित हो जाती है। लगता है कि साधना अदृश्य हो गई परंतु ऐसी अवस्था को योगीजन सिद्धी कहते हैं जहाँ साधना और साधक दोनों की गैर मौजूदगी में केवल साध्य बचता है। पंचम स्वर में विलीन होकर आप जब साधना के तारसप्तक के अंतिम स्वरों तक विकसित हो जाओ तब समझना कि अब मोक्ष को ढूँढने की कोई आवश्यकता नहीं है।

ऐसी ध्यानावस्था में मुक्ति साधक की सेवा में खड़ी होती है। और साधक को पता तक नहीं होता। और उसकी खेवना भी नहीं होती।

धरणा - ६३

तंतुवाद्य ध्यान

प्यारे साधको!

मानव शरीर असंख्य तंतुओं का बना है और शरीर के समग्र तंतुओं को चेतनावान होने का बोध कराते हैं ज्ञानतंतु। वे तंतु शरीर में करोड़ों की संख्या में हैं। तंत्र शास्त्र शरीर के इन तंतुओं को झंकृत करके साधक को महाकाश रूप बनने की एक विधि बताता है। यह विधि

विज्ञान भैरव तंत्र में सदाशिव पार्वती को बता रहे हैं।

शिव ब्रह्मांड के एक अद्भुत और अद्वितीय देव हैं। एक ध्यानी, ध्यान शास्त्र के उद्गाता, एक परम प्रेमी, योगी, एक सम्यक भोगी, एक नृत्यकार, वाद्यकार, उत्तम वक्ता, उत्तम श्रोता, असंख्य शास्त्रों के वक्ता क्या क्या नहीं हैं सदाशिव !

स्वयं नटराज ने तंत्र शास्त्र में तंतु वाद्य के स्वरों पर ध्यान विधि बताई है। इसका मतलब यह हुआ कि शिव को तंतु वाद्य के स्वरों से कुछ विशेष अनुभूतियां हुई होंगी। वायोलिन, गिटार, सितार, सरंगी, मेन्डोलिन जैसे तंतु वाद्य मनुष्य को विशिष्ट संगीत उत्पन्न करके समाधि में ले जा सकते हैं। मैंने सुना है कि रुद्र वीणा की खोज सदाशिव ने की है। मनुष्यता के कल्याण के लिए शिव सदाकाल प्रवृत्त रहे हैं कुछ ना कुछ कला विज्ञान और ध्यान के विकास में।

शिव कहते हैं कि जो साधक तंत्री, शततंत्री, परिवादिनी, तुम्बवीणा आदि आदि तंतुवाद्यों की ध्वनि अर्थात् मूर्च्छनात्मक स्वरों में लंबे समय तक लीन हो जाने वाला है वह परमाकाश रूप बन जाता है।

प्यारे साधको !

स्वरों की आरोह अवरोह की गति के पुनरावर्तन की प्रक्रिया को मूर्च्छना कहते हैं।

मेरे अनुभव से मैं कह सकती हूँ कि तंतुवाद्य के तार मनुष्य के भीतर के तारों को छेड़ देते हैं। श्रृंगार और भक्ति रस में तंतु वाद्यों का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है क्योंकि वहाँ मनुष्य का संबंध सीधा ही एक बहुत नाजुक केन्द्र के साथ जुड़ा हुआ होता है।

एक ज़माने में नर्तकियों के नृत्य में सरंगी अनिवार्य रूप से रहती थी। शास्त्रीय घराने के नर्तक एवं नर्तकियाँ नृत्य के सभी अंगों को भली भाँति जानते थे और अपने नृत्य के द्वारा उस कला को, उन अंगों की अभिव्यक्ति भी करते थे। उस अभिव्यक्ति में तबले के ताल के साथ वाद्य के स्वरों को मिलाने के लिए विशेष रूप से सरंगी का उपयोग ही होता था, क्यों ? क्योंकि सरंगी के तंतुओं में वह क्षमता है कि नृत्य के सारे भावों को अनुरूप ढंग से सहयोग कर पाएँ। नृत्यभाव मनोभावों का विरेचन कराना है।

नृत्य शास्त्र नृत्य के सोलह अंगों को बताते हुए कहता है कि

**हसन दसन, कसक मसक
चमक दमक, धुरन मुरन
उझक झिझक, लचक अचक
चलत चाल, हाव भाव
कटाक्ष सोलह अंग।**

इन अंगों को पूर्ण रूप से अपने नृत्य में व्यक्त करने के लिए संभव है कि नटराज को भी तंतु वाद्य से मदद मिली हो। सारे तंतु वाद्यों का मूल रूप है एकतारा।

प्राचीन काल में संत जंगल में झोंपड़ी लगाकर एकतारा के संग में जब भजन गाया करते थे तब गाते गाते वे पहुँच जाते थे महाकाश में। एकतारे के सहारे भक्ति संगीत के द्वारा उन्हें ध्यान लग जाता था। और बोध गगन में प्रवेश हो जाता था।

मेरे अनुभव के आधार पर किसी भी तंतु वाद्य को आप छेड़ेंगे तब उनमें से एक नाद गूँजता है, वह है तूँकार। शायद यह तंतु वाद्य मनुष्य को तू ही तू का संदेश देता है। किसी भी तंतु वाद्य में से मैं ध्वनि नहीं निकली है। परंतु प्रत्येक में से तूँकार जन्मता है। वाद्य को यह बोध नहीं है कि उसे छेड़ने वाला वाद्य का ज्ञाता है या नहीं। प्रत्येक वाद्य एक तटस्थ होता है। एक अर्थ में वह परब्रह्म के पक्ष में है वह समर्पित है। उसकी एक ही भाषा है और वह है 'तूँकार'।

समय के साथ विद्वानों ने तंतु वाद्य में सा रे ग मा भले बैठा लिया परंतु उसकी मूल ध्वनि तो तूँकार ही है, यह मनुष्यता के लिए बहुत बड़ा संदेश है।

तंतुवाद्य को ध्यान के माध्यमों में समावेश करने पर मैंने कई वाद्यों का अभ्यास किया। कुछ वाद्यों को थोड़ा बहुत सीखकर बजाकर तत्व को जानने की कोशिश की। सारे अभ्यास के बाद एक सर्वसामान्य बात स्पष्ट हुई कि तंतु वाद्य के सिवाय के वाद्यों में से अन्य ध्वनियाँ निकलने का बोध होता है परंतु प्रत्येक तंतु वाद्य उनके तार छेड़ते ही 'तू ही तू' जपने लगता है।

प्यारे साधको !

'तू ही तू' से बड़ा कुछ भी नहीं है। जब मनुष्य के तार तार 'तू ही तू' पुकारने लगें तब समझ लेना कि अहंकार पूर्ण रूप से गिर गया है। वस इसी बात को लेकर शिव आपको तंतु वाद्य के द्वारा ध्यान में ले जाना चाहते हैं। एक बार एक संत रात के वक्त अपनी कुटिया में इकतारा

लेकर बजा रहे थे। 'तुं तुं' ध्वनि पूर्णरूप से माहौल में छा गई थी। इतने में उनका कोई मित्र आया। द्वार खिटखिटाया, संत ने पूछा - 'कौन ?' मित्र ने कहा - 'मैं हूँ।' संत ने भीतर से जवाब दिया - 'वापस लौट जाओ यहाँ 'मैं' और 'हूँ' को कोई स्थान नहीं है। यहाँ तो केवल 'तू ही तू' का नाद छाया हुआ है। यहाँ 'मैं' और 'तुम' दो के लिए कोई स्थान नहीं है। यहाँ तो सिर्फ अद्वैत की यात्रा हो रही है।'

कुछ समय के बाद मित्र फिर से आया, द्वार खिटखिटाया। भीतर से पूछा गया - 'कौन है ?' तब बाहर से जवाब आया 'तू ही तू।' संत से उसे प्रवेश दे दिया कुटिया में। कुछ क्षणों के बाद किसी और मित्र ने द्वार खटखटाया संत ने पूछा - 'कौन है ?' बाहर से कोई जवाब नहीं आया, संत ने द्वार खोल दिया। तीसरे मित्र ने चुपचाप भीतर आकर अपना स्थान ले लिया। यह दृष्टांत मनुष्य के अहंकार से लेकर अध्यात्म तक की उपलब्धी की यात्रा को स्पष्ट करता है।

अज्ञानावस्था में मनुष्य मैं मैं की भाषा बोलता है। परंतु शरीर सत्ता और जीवन की क्षणभंगुरता का ज्ञान होते ही शरीर रूपी एकतारे के तार के द्वारा 'तू ही तू', 'तू ही तू' रटता रहता है। कभी कभी 'मैं' आ जाता है तो भी उसे प्रवेश नहीं मिल सकता। और जब पूर्ण रूप से मैं का विसर्जन हो जाता है, तब 'मैं' और 'तू' का भेद करने वाला भी नहीं बचता है। जब विशुद्ध अस्तित्व का ही बोध रहता है तब 'मैं' और 'तू' सब मिट जाता है। तो फिर जवाब कौन देगा ?

प्यारे साधको !

आपको इतना ही सीख लेना है तंतु वाद्य ध्यान से। पहले मैं का विसर्जन, फिर 'तू ही तू' और फिर महामौन।

ध्यान आपको यह अवस्था दे सकता है। ध्यान आपको मृत्यु से भी निर्भय कर सकता है। टाइटेनिक फिल्म में ध्यानियों को देखने योग्य एक बड़ा प्यारा दृश्य है।

कप्तान की गफलत की वजह से महाकाय और अतिमूल्यवान टाइटेनिक जहाज जिसमें असंख्य लोग थे, वह डूब रहा था। भाग दौड़ मच गई है पूरे जहाज में। कोई रो रहा है कोई चिल्ला रहा है। कोई बचने बचाने की कोशिश कर रहा है। परंतु कोई संभावना नहीं थी जहाज और यात्रिकों के बचने की। ऐसी स्थिति में वाद्यकारों का एक ग्रुप जो वायलीन बजा रहा था वह उसके वाद्य को बजाने में और तल्लीन हो जाते हैं। खो जाते हैं वाद्य के स्वरों में, स्वरों को उसकी चरम सीमा तक ले जाते हैं। सब मस्त हैं वाद्य को बजाने में एक अर्थ में सब संगीत समाधि में खो गए हैं, बिल्कुल निर्भय हैं। जहाज डूब जाता है परंतु मजे की बात यह है कि जहाज जल समाधि ले उसके पहले तंतु वाद्य के स्वरों में तदाकार होकर वह ग्रुप संगीत समाधि में विलीन हो जाता है।

हरे राम हरे कृष्ण का जाप पूरे विश्व में सबसे ज्यादा मस्ती से किसी ने गाया हो तो वह हिप्पीयों ने गाया है, उसका कारण है तंतु वाद्य गिटार का साथ, गिटार के बिना हिप्पी की कल्पना भी नहीं हो सकती; मस्ती, गिटार, अस्तव्यस्तता और स्वतंत्रता यह हिप्पी की पहचान है। गिटार की धुन पे नाचते रहने वाले हिप्पी को 'तुंकार' के प्रभाव का पता हो या ना हो परंतु गिटार के तारों को छेड़ते छेड़ते वे लोग एक अलग विश्व में पहुंच जाते हैं। हिप्पीयों की कोई जाति नहीं होती है। ये एक विशेष जाति है जो अपनी अपनी जाति छोड़कर भटकते हुए अपने में मस्त रहते हुए शरीर, बाल और कपड़े की चिंता किए बिना बेहोशी में पड़े रहते हैं, शुद्धि अशुद्धि की चिंता किए बिना; शिव मंडली की भांति। परंतु उनमें एक बात खास होती है। वो जो कुछ भी करते हैं वह समग्रता से करते हैं। मुखौटा उतारकर करते हैं।

शिव कहते हैं कि तंतु वाद्य के क्रमिक स्वर गति में चित्त वृत्ति को स्थिर करते करते शब्दों से निवृत्त होकर परमाकाश में खो जाओ। ये परमाकाश शब्द जो है वही किसी गूढ़ ईश्वर के प्रति इशारा है।

तंतु वाद्य के स्वर के साथ लगातार तल्लीन होने का अभ्यास करते करते उसके तूकार में विलीन होते होते जब साधक चित्त वृत्तियों से मुक्त होने लगता है तब 'मैं' गिर जाता है।

जब 'मैं' गिर जाता है तो मेरा भी गिर जाता है और जब भीतर से मेरा मिट जाता है अर्थात् सत्यबोध जग जाता है तब सिर्फ तेरा तेरा बचता है।

शिख धर्म के प्रस्थापक गुरु नानक के बचपन में तेरा शब्द के द्वारा अध्यात्मिक क्रांति घट गई थी। छोटा सा नानक किराणे की एक दुकान पर माल-सामान झोखने में मदद का काम करता था। एक बार झोक-तोल के लिए नानक की बारी आ गई। गलती न हो जाए और हिसाब किताब में गड़बड़ न हो इसलिए नानक ने चीजों का झोक की गिनती जारी रखी थी। एक... दो ... तीन ... चार... ऐसा करते करते गिनती बारह तक तो पहुंची, कर्मयोग बराबर चल रहा था। तेरह की गिनती आते ही नानक भाव समाधि में खो गया। कर्म छूट गया और आंख बंद करके रटने लगा तेरा ... तेरा ... तेरा ...। नानक की अवस्था को कोई नहीं समझ पाया। छोटे से नानक को दुकान से निकाल दिया गया; बात भी सही है। ध्यान में उतरने वाला गणित कैसे कर सकता है ? नानक दुनियादारी के हिसाब किताब के लिए थे ही नहीं। तब से उसका तदात्म्य संसार

से छूटा और उसका तार जीवनभर ब्रह्म के साथ जुड़ा रहा।

प्यारा साधको!

ध्यान, 'मैं-मैं', 'तू-तू' और 'मेर-तेरे' के झगड़े को मिटा देता है। और शिव के अनुसार यह अवस्था तंतु वाद्य के स्वरों की गति में प्रवेश करके शीघ्र प्राप्त हो सकती है। जब भी मौका मिले तंतु वाद्य का संगीत सुनने का तब चूकना मत। अगर आप उसका ज्ञान प्राप्त करके स्वयं बजा सकते हैं तो बहुत अच्छा। जब भी सुनो इस संगीत को तब खो जाओ 'तुंकार' में। जब आप आंख मूंद लेंगे और केवल संगीत सुनते रहेंगे तब वाद्य नहीं सिर्फ संगीत का अनुभव ही रहेगा। इसके साथ साथ उसके स्वरों की क्रमिक गति के विकास से आपके शरीर के करोड़ों तंतु जीवंतता का अनुभव करने पर भी शरीर अदृश्य होने की अनुभूति होगी। रोम रोम में केवल संगीत बजेगा। वह संगीत सुक्ष्म में से विराट में फैलता जाएगा। वाणी गहन मौन में उतर जाएगी। मन विलीन हो जाएगा संगीत के स्वरों में और साधक महाकाश में विहार करता हुआ परम पद को प्राप्त कर लेगा।

धरणा - ६४

तालवाद्य ध्यान

प्रिय साधको!

आंतरिक जीवन और बाहरी जीवन दोनों की प्रसन्नता के लिए जीवन में ताल अनिवार्य है। हमारे संगीत में तो ऐसा कहा जाता है कि एक बार बेसुरा चल सकता है परंतु बेताला नहीं चल सकता।

जीवन का भी ठीक ऐसा ही है। सुर तो कभी चढ़ जाते हैं, कभी उतर जाते हैं, कभी इधर उधर हो जाते हैं। उसे विशेष विश्लेष के बिना साधा जा सकता है।

वैसे तो सुर बड़े सूक्ष्म होते हैं। फिर भी कभी कभी छटका हुआ स्वर जीवन के पूरे लय को नहीं तोड़ सकता। जीवन के सुरों में कभी कभी कोमल, शुद्ध अथवा तीव्र स्वरों में थोड़ा फर्क पड़ जाता है।

कुछ विशेष परिस्थितियों में आदमी एक के स्थान पर दूसरा स्वर छेड़ देता है। जिसे हम गलती कहते हैं।

कभी कभी ऐसा होता है कि जहाँ शुद्ध स्वरों से काम लेना होता है, वहाँ स्पष्ट नहीं रह सकते। प्रेम, अहसान, भावनाएं अथवा स्वार्थ के कारण शुद्ध स्वर की जगह कोमल स्वर लगाना पड़ता है या लग जाता है। और उग्रता अथवा अस्वस्थ अवस्था में भी कोमल के स्थान पर तीव्र स्वर लग जाता है।

परंतु स्वर लग जाने के बाद अगर जीवन का गीत गाने वाला मनुष्य सजग है तो स्वरों को फिर से संभाल लेता है परंतु जब ताल ही टूट जाता है तब गीत बिखर जाता है।

चलना, नाचना, झूमना, उछलना, कूदना, बच्चों का गोल गोल घूमना, थोड़ा खेल कर फिर से रुकना ये सारे प्रवृत्तियों का संबंध भीतर की ताल से है। मनुष्य के भीतर भरा हुआ कुदरती ताल उसे चलने फिरने उपरांत इन सब बातों के लिए प्रेरित करता है।

वैसे तो ताल और संगीत भिन्न भिन्न नहीं हैं फिर भी ताल का अपना एक विशिष्ट महत्व है। संगीत में उसकी एक अहम भूमिका है।

ताल की महिमा जीवन में और संगीत में अपरंपार है। संगीत शास्त्र के ज्ञाताओं ने अनेक प्रकार के तालों की खोज की है। सोलह मात्रा, आठ मात्रा, सात मात्रा, चौदह मात्रा, दस मात्रा, छः मात्रा आदि के विविध तालों की खोज हुई है। मात्रा ताल के बजने के समय का छोटे से एकम का नाम है।

वैसे तो असंख्य ताल हैं। किसी भी चीज़ पर हाथ से या किसी भी वस्तु को लयबद्धता के साथ टकराकर जो ठेका दिया जाता है, वह बन जाता है ताल।

ताल की सारी मात्राएं बजकर आवर्तन पूरा होकर जब वह पहली मात्रा पर आता है उस मात्रा को सम कहते हैं यह सम के स्थान पर गीत के मुखड़े का विशेष वजन का खास शब्द आता है। यह सब बातें गहन और सूक्ष्म हैं।

एक कला प्रेमी व्यक्ति, एक संगीत प्रेमी व्यक्ति अथवा कला को एक शास्त्रीय विद्या के रूप में पढ़ने वाला मनुष्य इन सब बातों की गहराई में उतरेगा। परंतु साधारण जन के लिए संगीत का यह हिसाब किताब कोई काम का नहीं है। क्योंकि कितनी भी व्याख्या करने पर भी जो संगीत अथवा ताल की ध्वनियों को सुनकर आनंद आएगा, उसके द्वारा जो ध्यान लगेगा, उसके द्वारा जो गहनता की अनुभूति होगी ऐसी अनुभूति

ताल विषयक शास्त्रों को पढ़कर या संगीत संबंधी व्याख्याओं को पढ़कर कभी नहीं हो सकती।

ये सब बातें केवल कागज़ पर पढ़ना बहुत बोरिंग लगेगी। इसलिए मेरे प्रवचनों में और ध्यान विधियों में मैंने शास्त्र के साथ रहकर भी शास्त्रीयता से ऊपर उठने का प्रयत्न किया। ताकि आपके लिए कोई सत्य भी सरदर्द न बन जाए।

मेरा प्रयास हमेशा यह रहा है कि गहन से गहन बात भी मेरे साधक बोलचाल की भाषा के द्वारा समझ लें।

प्यारे साधको!

आप अगर एक संगीत प्रेमी व्यक्ति हैं और उसमें भी ताल वाद्य के प्रेमी हैं। तो यह ध्यान और ध्यान विधि आपके लिए अत्यंत उपकारी है।

मेरा अनुभव है कि सम केवल तबले में ही नहीं होता। यह तो कुदरत में, प्रकृति में गुथा हुआ है। समंदर की लहरें कहीं दूर दूर से आती हैं ऐसा लग रहा है, वह किनारे के तट पर आकर एक गंभीर ध्वनि के साथ जोर से गिर कर बिखर जाती है। वह बिखरना हमको दूर से आने वाली लहर की बिखरने के पहले की अंतिम उफान लगता है परंतु वह समंदर के संगीत का सम है। वह नई तरंगें उठने की प्रथम मात्रा है।

खिले हुए फूल धरती पे गिरना, पके फल का गिरना, पक्षी का डाली से उड़कर किसी स्थान पर बैठना, ये सब कुदरत 'सम' के ही प्रकार हैं।

ताल की प्रथम मात्रा में एक वज़न होता है अर्थात् उसके उच्चार में, उसके थाप में, उसकी ध्वनि में, एक विशेष भार होता है। वह एक प्रकार की कलात्मक चोट है, ऐसी चोट से विविध ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

त्रिताल, जपताल, एक ताल, कहरवा, रूपक, दादरा या दीपचंदी कोई भी ताल हो परंतु ताल के आवर्तन की प्रथम मात्रा हमेशा भारी होती है।

समग्र संगीत चक्र का सौन्दर्य इस प्रथम मात्रा पर आधारित है। जीवन में भी ऐसा ही है। महत्वपूर्ण बातों में मनुष्य पहला कदम कैसे उठाता है? और कहाँ रखता है? उसपर बहुतकुछ निर्भर करता है।

साधना के मार्ग में भी ऐसा ही है। आपने प्रारंभ कैसे किया है? उस बात पर आपकी आगे की यात्रा की लय बंधती है। तय होती है। उस लय के अनुसार यात्रा एक व्यवस्था प्राप्त करती है। पहला कदम अगर उचित और दृढ़ है तो आंतरिक विकास आसान बन जाता है।

मैंने देखा है कि कुछ लोग मूल में आध्यात्मिक प्रकृति के होते हैं। आध्यात्म को अपना लक्ष्य बनाने के लिए वे तत्पर भी होते हैं। जरूरत होती है योग्य समय पर योग्य मार्गदर्शन की। योग्य मार्गदर्शन के अभाव में कभी कभी ऐसा होता है कि उनका पहला कदम ही कमजोर होता है और ऐसी दिशा में उठ जाता है कि जो दिशा उनके लिए नहीं होती है।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि संप्रदायिक चित्त आध्यात्म की दिशा में कदम उठा लेता है। तब मैं कहूँगी कि उसका 'सम' गलत लगा।

ऐसा मनुष्य आध्यात्म से जल्दी ही अपना ताल तोड़कर वापस मुड़ जाते हैं, मंदिर मस्जिद, कर्म-कांड की ओर। कभी कभी आध्यात्मिक व्यक्ति भी स्पष्ट दृष्टि के अभाव में भीड़ और मंदिर में चला जाता है। और घूम फिर कर आ जाता है वापस ध्यान की ओर। क्योंकि उसका ताल मेल संप्रदायों से नहीं बैठ पाता।

प्यारे साधको!

मेरी बात को समझने की कोशिश करना। मैं कोई मंदिर विरोधी व्यक्ति नहीं हूँ। मैंने तो मंदिर बंधवाए हैं। परंतु इतना जरूर कहूँगी कि मंदिर प्रारंभ है और ध्यान गर्भद्वार है। वैसे ही आपके मंदिरों में आपको गर्भद्वार में कौन प्रवेश देता है? दूर से भगवान का दर्शन करो, प्रसाद ले लो, तिलक कर लो, पंचपात्र या झारी में भरे हुए जल का चरणामृत ले लो और विदा हो जाओ। अगर दिल चाहता है तो भगवान से दूर रहकर दो चार प्रदक्षिणा कर लो।

कुछ खास मंदिरों में तो मनुष्य के साथ पशु से भी खराब वर्ताव किया जाता है। वहाँ इतनी भीड़ होती है कि पुलिस लाठियां लेकर खड़ी होती है। भगवान की सुरक्षा के लिए वहाँ लाइव डिटेक्टर केबिनें खड़ी की हैं। शस्त्रधारी रक्षक खड़े हैं। वहाँ प्रत्येक दर्शनार्थी को एक आतंकवादी की दृष्टि से देखा जाता है।

आप आतंकवादी हैं कि नहीं वह मशीनें तय करती हैं। परंतु मैं कहती हूँ कि हाथ में हथियार उठाए बिना और आतंक फैलाए बिना भी लोगों के अंदर एक आतंक पड़ा हुआ होता है। वह आतंक रोज-ब-रोज की जिन्दगी में परिवार, पड़ोसी और ऑफिस या बाजार में छोटे छोटे रूप से सबको आतंकित करता रहता है। दुनियाँ का प्रत्येक आतंक का शमन ध्यान से ही संभव है अथवा प्रेम से।

हाँ, आपके और भगवान के बीच में खास मंदिरों में एक कटहरा जैसा होता है। उस सीमा में रहकर ही आपको दर्शन करना होता है।

उस सीमा को गलती से भी लांघ लिया तो आपको पुलिस पकड़कर बाहर फेंक देगी। वो आप और भगवान के बीच में एक लक्ष्मण रेखा जैसा होता है। उसे लांघना एक अपराध बन जाता है।

मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा करने वाला मनुष्य मूर्ति का चरणस्पर्श करके उसका निकट से दर्शन तक नहीं कर पाता ! यह कैसा धर्म ?

विश्व में पत्थर पूजे जाते हैं, वृक्ष पूजे जाते हैं, जल पूजा जाता है, आसमान पूजा जाता है, अग्नि पूजी जाती है, मिट्टी पूजी जाती है, तो क्या केवल मनुष्यता ही मूल्यहीन है और सबकुछ मनुष्य से ज्यादा पावन है ?

आप आपकी नजरों के सामने देखते हो कि गर्भद्वार पर एक जेलर की तरह एक या ज्यादा पुजारी भगवान पर कब्जा करके बैठे हैं। उसके मुंह में गुटका भरा है। चहरे पर से भावहीनता टपक रही है। आँखों में लालच दिखाई देता है। नजर थाली में गिरती हुई नोटों पर होती है। साथ साथ भीड़ में से कौन कौन फंस सकता है; पाँच सौ, हजार ढीला करने के लिए। उसका अंदाज लगाकर शिकार की खोज हो रही है।

उस पुजारी पद के भी कुछ खास लोग ही दावेदार होते हैं। वे वंश परंपरा के आधार और अधिकार से राजा महाराजाओं के समय से लेकर आज तक चिपके रहे हैं मंदिरों में।

कुछ लोग ट्रस्ट के नियम के आधार पर चिपके हैं। कुछ लोग अच्छी खासी तनखाह लेकर पुजारी की नौकरी बजा रहे हैं, ऐसे लोगों के पास भाव, समर्पण, सहजता, सरलता की अपेक्षा नहीं रखी जाती। उनकी प्राणहीन पूजा में उसका अश्रद्धालु हृदय प्रतिबिंबित होता है।

मैंने देखा है कि भगवान की मूर्ति की ओर श्रद्धालुओं की ओर से भाव से लाई गई फूल मालाएं एक चीज की तरह फेंकी जाती हैं। वो फेंकने की तनखाह लेते हैं, झुकना तो जानते ही नहीं हैं।

कम दक्षिणा वाले भक्त, उनके नकारात्मक व्यवहार के शिकार बनते हैं। कुछ धार्मिक एजेन्ट आप जपतक मंदिर छोड़ न दो तब तक आपको नहीं छोड़ते हैं।

दर्शन, शांति, तीर्थ धाम की पावन तरंगें – इन सबका अनुभव करने की बात तो दूर रही। यात्रा धाम के पौराणिक धार्मिक सांस्कृतिक या ऐतिहासिक महत्व जानने की बात भी दूर रही परंतु सच्चे भक्त मंदिर छोड़कर एक बड़े भार से छुटकारा पाया हो, ऐसा अहसास करते हैं। मनुष्य की श्रद्धा के साथ ये धर्म के नाम पर हो रहा एक अधार्मिक खिलवाड़ है।

हाँ, जो लोग भगवान के पास मतलब से जाते हैं, या कुछ कोन्टैक्ट करने के लिए जाते हैं; ऐसे लोग स्वार्थवश सब सहन कर लेते हैं और वैसे लोगों को धार्मिक एजेंटों की जरूरत भी पड़ती है।

मैंने तो अनेक बार अनुभव किया है कि जो गर्भद्वार में प्रभु के निकट खड़े हैं, वे मंदिर के बाहर होने चाहिए और भक्तों के लिए बांधी हुई सीमाओं में जो लोग खड़े हैं और प्रभु के दर्शन के लिए प्रतीक्षारत हैं उन्हें गर्भद्वार के भीतर स्थान मिलना चाहिए।

परंतु जहाँ धर्म भी परदे के पीछे एक राजनैतिक खेल का मोहरा बन गया हो और धन का गुलाम बन गया हो, वहाँ आप किस किस के साथ विवाद में उतरेंगे ? कहाँ कहाँ संघर्ष मोल लेंगे ? ऐसे तो पूरा जीवन ही संघर्ष में गुजर जाएगा।

जहाँ शिक्षित और समझदार लोग भी अपनी धार्मिक भावनाओं पर काबू न पा सकने की वजह से स्वयं को शोषित होने देते हैं, तो फिर एक क्रांतिकारी चिंतक और विचारक भी क्या कर सकता है ? – ऐसी परिस्थिति को लोग कहते हैं, श्रद्धा !

परंतु मैं कहती हूँ कि अगर आपकी श्रद्धा का कोई नाजायज़ फायदा उठा रहा है, तो श्रद्धा को साबुत रखकर दिशा को बदल लो।

मैं श्रद्धा के खिलाफ नहीं हूँ। श्रद्धा के नाम से होते हुए शोषण के खिलाफ हूँ। अपनी श्रद्धा को मत टूटने देना। श्रद्धा तो जीवन का बल है। वह एक पावन और हकारात्मक भाव है। परंतु जब आपको लगे कि उसका दुरुपयोग हो रहा है। तो जो श्रद्धा बहिर्मुखी है उसे अंतर्मुखी बना दो। श्रद्धा तो श्रद्धा है। वह पत्थर में भी परमात्मा देख सकती है। तो अपने में तो अवश्य दर्शन को पा लेगी। मेरी बात पर थोड़ा विचार करना।

मैं कहती हूँ कि जिसे खुद पर श्रद्धा नहीं है, ऐसा मनुष्य श्रद्धालु नहीं परोपजीवी है, भीरु है, पलायनवादी है। खुद के बल पर कुछ नहीं कर सकता इसलिए सबकुछ भगवान पर छोड़ता है। भगवान कभी कार्यों को सहारा नहीं देते।

पहले खुद पर श्रद्धा रखो क्योंकि खुद पर श्रद्धा रखना यह भी परमात्मा पर श्रद्धा रखने के बराबर है। क्योंकि आपको परमात्मा ने बनाया है। उसकी अदृश्य शक्तियाँ ही आपके भीतर और बाहर काम कर रही हैं। उस शक्ति से आप जी रहे हो। इसलिए उस परमात्मा को प्रेम करना उसे धन्यवाद देना, उसकी जयजयकार करना स्वयं से प्रारंभ करो। वह आपसे भिन्न नहीं है। उसकी कृपा का आप सबसे बड़ा प्रमाण हो।

विश्व की कोई भी मूर्ति आपके स्वरूप से ज्यादा जीवंत नहीं हो सकती, यह एक परम सत्य है। परंतु इतना श्रेष्ठ प्रमाण होने पर भी मनुष्य अपने भीतर क्यों नहीं उतरना चाहता ? वह अपने भीतर के परमात्मा का दर्शन क्यों नहीं करता ध्यान में उतरकर ? वह क्यों भागता है इधर उधर भगवान की खोज में ? भगवान के लिए चारों ओर भटकने वाला श्रद्धालु नहीं परंतु अश्रद्धावान है। यह स्वयं में अश्रद्धा है। अपने लिए इतना अश्रद्धावान क्यों बनना ? – अपने भीतर उतरो। वहाँ सबसे ज्यादा आनंद और परमात्मा की दिव्यता का अनुभव होगा। मंदिर में धक्के भी खाने

पड़ेंगे। ध्यान आपको कभी आपको धक्का नहीं मारेगा। वह कभी धुत्कारेगा नहीं। वह कभी दूर खड़े रहकर भगवान का दर्शन करने को नहीं कहेगा। ना दान दक्षिणा मांगेगा न ही अपमानित करेगा। वह तो आपके गर्भद्वार में विराजित परमात्मा के निकट आपको शांति से बिठाएगा। ध्यान आपका साक्षात्कार करा देगा परमात्मा से। क्यों भाग रहे हो ध्यान से ? क्यों डर रहे हो ? क्यों निराश हो रहे हो ? – मैं कहती हूँ अब स्थिर हो जाओ स्वयं में।

मैं नहीं चाहती हूँ कि आध्यात्मिक व्यक्ति भटक जाए और मंदिरों की भीड़ में आपका ताल टूटे या आप बिखर जाओ अथवा आप दिशाहीन हो जाओ। जो पाना चहते हो वह न पा सको और बार बार भटकते रहो। ऐसी भटकन जब कुछ ज्यादा लंबी हो जाती है तब आचार्य शंकर उसे –

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं...

अगर भगवान का भी मोह है तो आपको मोह मुद्गर स्तोत्र की अवश्य जरूरत है। प्रभु का मोह नहीं रखते, उसमें तो मिल जाते हैं, खो जाते हैं, विलीन हो जाते हैं।

मेरे मत से मोह उसका होता है जिसे पाना बाकी हो। परमात्मा को तो आप पहले से ही पाए हुए हो। परंतु अबोध हो, इस सत्य के बारे में।

मैं कहती हूँ कि जब तक किसी भी विषय, वस्तु या व्यक्ति का मोह रहेगा तब तक दो रहेगा अर्थात् द्वैत रहेगा। जब अद्वैत स्थापित हो जाएगा तब मोह छूट जाएगा। क्योंकि फिर मोह के लिए कोई स्थान नहीं रहेगा। मोह अशांत करता है, अद्वैत शांति में प्रवेश करा देता है।

आप और परमात्मा के बीच में एकरूपता स्थापित होने के लिए एक श्रेष्ठ मार्ग है और वह रास्ता आपकी ओर मुड़ता है। वह भीतर की ओर जाता है, जिसे मैं कहती हूँ ध्यान। उसे कुछ विशेष नहीं करना है परंतु केवल दिशा बदलनी है आप उससे विमुख होकर ज्यादा बहिर्मुखी बन गए हैं। अब ध्यान द्वारा फिर से भीतर की ओर मुड़ें।

उस ध्यान की अनेक विधियों में से एक विधि है – ताल वाद्य ध्यान।

प्रत्येक मनुष्य का चित्त अलग अलग प्रकार का होता है। प्रत्येक के रस रुचि भिन्न भिन्न होती है। उसके अनुसार ही साधक ध्यान विधि को पसंद करेगा।

कुछ लोगों के भीतर उतनी तालमयता होती है कि किसी भी ताल वाद्य के बोल के साथ वे तुरंत ध्यानस्थ हो सकते हैं। उनके सारे विचार शीघ्र ही अदृश्य हो जाते हैं।

मैंने ऐसे लोगों को देखा है कि जिसने संगीत शास्त्र कभी पढ़ा नहीं, ताल का ज्ञान नहीं, ताल कभी बजाए नहीं, फिर भी वे लोग सम पर दाद देते हैं। ये एक कुदरती बख्शीस है।

ताल सिखाया नहीं जाता। जिसके भीतर ताल पड़ा होता है वह व्यक्ति अगर उस विद्या में शास्त्रीय रूप से आगे बढ़ना चाहता है तो उसमें शास्त्र ज्ञान के द्वारा ताल विषयक विशेष समझ को जगाकर उसकी कला को खिलने की एक व्यवस्था दी जा सकती है।

बेताले आदमी को कितना भी ताल ज्ञान दो वह निरर्थक होगा। वह नहीं सीख पाएगा। क्योंकि ताल में रहना कोई सिखाने की चीज़ नहीं है। तालमयता एक भीतरी क्षमता और व्यवस्था है।

जो व्यक्ति भीतर से तालमय है ऐसे व्यक्ति का चलना, बोलना, बैठना, सोचना, व्यवहार करना – उन सबमें एक व्यवस्था और सौन्दर्य नजर आता है। एक सम्यकता दिखाई देती है।

उसके वाणी वर्तन में एक सूत्रता होती है। और बेताला मनुष्य कितना भी चतुर दिखे या खुद को कितना भी स्मार्ट दिखाने की कोशिश करे फिर भी उसके जीवन जीने के ढंग से, उसका इस समाज और परिवार के साथ की रहन सहन के ढंग से उसका बेतालापन सपाटी पर आ जाता है।

प्यारे साधको !

तालमय व्यक्ति के लिए अध्यात्म जगत में विकसित होना बहुत आसान हो जाता है। उसकी आधी यात्रा तो जन्म के साथ ही पूरी हो गई है ऐसा समझ लो क्योंकि वह अपने भीतर जन्मजात एक लय, एक ताल, एक गतिमयता लेकर आया है।

इसलिए स्वाभाविक है कि सम्यक कर्म और सम्यक विचार उसकी मदद करते रहेंगे।

मिलजुल के रहना, सबको साथ जोड़े रखने की कोशिश करना, सबके साथ जुड़े रहना, सबका सहयोग करना, दूसरों के हित के लिए खुद का नुकसान भी सहन कर लेना, क्षमा करना और रिश्तों को सुलझा लेना; ये सब भीतर से तालपूर्ण व्यक्ति के लक्षण हैं।

ऐसा भी नहीं कि जो भीतर से तालपूर्ण है वह संगीत के ताल का जानकार हो। और ऐसा भी जरूरी नहीं कि संगीत के ताल को जिसने सीख लिया, उसके जीवन का तालमेल भी ठीक से बैठा हो।

मैंने कई संगीतकारों के जीवन में सबसे ज्यादा तालभंग देखा है। इसका भी एक कारण है – संगीत ध्यान को जन्म देता है, ध्यानी चित्त स्वतंत्रता चाहता है और स्वतंत्रता की पुकार मुक्ति देती है। सजगता के अभाव में ऐसे लोग अपना नुकसान भी कर सकते हैं। एक हद से ज्यादा वह समाधान नहीं कर सकते। होश के अभाव में उसका संसार टूट सकता है। जाग्रति से किया हुआ समाधान मनोतनाव पैदा नहीं करता और स्वीकार भाव बढ़ाता है। स्वार्थ या जरूरत से किया हुआ समाधान झूठ, बनावट और सप्रेषण को पैदा करता है।

प्यारे साधको!

ध्यान मनुष्य और तालमयता के बीच की एक कड़ी है। ध्यान आपके जीवन को तालमयता प्रदान करता है। बाहर का ताल अगर ध्यान बन जाए तो आपके भीतर के लय को ठीक करके जीवन को संगीतमय बना सकता है। तालवाद्य के संगीत को ध्यान विधि के रूप में देने के पीछे मेरा यही प्रयोजन।

इस विधि में आप तीन प्रकार से उतर सकते हैं। अगर आप वाद्य को बजा सकते हो तो बजाने में लीन हो जाओ, स्वयं वादन बन जाओ, वाद्य रूप बन जाओ, नाद रूप बन जाओ। किसी भी एक ताल को पकड़कर बजाने लगे और खो जाओ ताल में। उस हद तक बजाओ कि खुद को भूल जाओ, तब सहज ही निर्विचार अवस्था को उपलब्ध हो जाओगे। और यह क्षण समाधि की है।

अगर आप बजाना नहीं जानते हो परंतु मस्ती से नाच सकते हो तो ताल की ध्वनियों के साथ नाचने लगे। जरूरी नहीं कि आप शास्त्रीय नृत्य के जानकार हों। यह ध्यान करने के लिए नृत्य में केवल आपकी रुचि होना जरूरी है।

अगर आपमें ताल पड़ा होगा तो आप थाप के अनुसार ठुमकियाँ लेते जाना। और आंखें बंद करके किसी की तरफ ध्यान दिए बिना हाथों के द्वारा विविध मुद्राएं बनाकर, पूरे शरीर को लचीला रखकर प्रसन्नचित्त से अपने ढंग से नाचते रहो। स्वयं को ताल के हवाले कर दो।

आप अचानक निर्विचार स्थिति में पहुंच जाएंगे। अस्तित्व में से एक शांति बरसने लगेगी। शरीर की ऊर्जा का आनंद प्राप्ति के लिए तालध्यान उचित उपयोग कर लेगा।

जब आपको लगे कि अब शरीर काबू के बाहर है वह थक गया है तब शब की भांति गिर जाओ जमीन पर। पड़े रहो मुर्दे की भांति। वह क्षण समाधि का क्षण बन जाएगा। इस क्षण में ताल का बंद हो जाना अति जरूरी है। परम शांति और गहन मौन में चले जाएंगे आप। आनंद बरसने लगेगा। आप एक अलग विश्व में होंगे। एक निःशब्द जगत के आकाश में आप विहार करने लगेंगे। यह अनुभव ही शिवत्व की अवस्था है। आपकी ऐसी ऊर्जा जो शरीर में जमा होकर विक्षेप कर रही थी, उसका उचित ढंग से विरेचन होने से आप स्वयं को शांत, शरीर को हल्का और विशेष क्षमतावान महसूस करेंगे।

अगर आप नाचना नहीं जानते हैं अथवा नाचने के लिए शारीरिक क्षमता नहीं है तो किसी भी ताल के बोल को सुनने के लिए बैठ जाओ। कोई तबलची रियाज़ कर रहा है तो उसके रियाज़ का आपके ध्यान में उपयोग कर लो। अथवा किसी म्यूज़िक सिस्टम के सहारे भी आप इस ध्यान को कर सकते हो।

बैठे बैठे सुनते रहो ताल की ध्वनियों को, आँख मूंदकर खो जाओ ताल में। किसी शास्त्रीयता में उतरने की कोशिश मत करना। आप अगर ताल शास्त्र के ज्ञाता हो तभी शास्त्र भी आपकी मदद कर पाएगा। परंतु ताल शास्त्र के बारे में कुछ भी जाने बिना लय के बोल को पकड़ने जाएंगे तो ध्यान छूट जाएगा, खाली की जगह ताली और ताली की जगह खाली हो जाएगा और एक बौद्धिक कसरत शुरू हो जाएगी। आपकी स्थिति गणित के कमज़ोर विद्यार्थी जैसी हो जाएगी।

‘धा’ बज रहा है कि ‘ता’, ‘धि’ बजा रहा है कि ‘ति’, ‘तुत्रा’ है कि ‘कता’ इन सारी बातों में मत पड़ना। शास्त्र के ज्ञान के बिना अगर इसमें पड़ने की कोशिश की तो मूर्ख भी सिद्ध होंगे और भटक भी जाएंगे। सिर्फ ध्वनियों में डूबते जाओ, ध्वनि रूप बन जाओ, खोते जाओ स्वयं को ताल के लय में, आंखें मूंदकर आपकी श्रवणेन्द्रिय को समर्पित कर दो ताल को। अन्य क्रियाएं बिलकुल मत करना।

जब समग्रतया आपकी चेतना तालमय हो जाएगी तब धीरे धीरे वादक, वाद्य और श्रोता अर्थात् आप सब खो जाएंगे। बचेगी मात्र लयात्मकता। वही अवस्था ईश्वर की उपस्थिति की है। वह एक धबकारमय निराकार परमात्मा है जो भीतर और बाहर ध्वान्यात्मक होते रहते हैं। ऐसी अवस्था में आपका देह रोमांचित हो जाएगा। रक्त की गति तेज़ हो जाएगी। ताल बंद होते ही धीरे धीरे आप महाशांति के विश्व में विहार करने लगेंगे। जहाँ मैं और तू कुछ नहीं बचता, कोई अभिव्यक्ति नहीं, कोई शब्द नहीं, कोई चाह चाह करने वाला भी नहीं। वहाँ बचता है सिर्फ ध्यान। वहाँ संगीत, संगीत का भोग और भोगी सब अदृश्य हो जाता है। सिर्फ ऊर्जा की उपस्थिति रहती है। ऐसी ध्यानावस्था समाधि कहलाती

है।

प्यारे साधको!

जब कभी भी मौका मिले ताल वाद्य ध्यान का, और आप अगर एक संगीत प्रिय और विशेष रूप से तालप्रिय व्यक्ति हो तो तबला, ढोलक, ढोल, पखावज, मृदंग, डफली, डाक, डमरू या किसी भी ड्रम सेट्स का ताल आपको ध्यानमग्न कर सकता है। और इस ध्या के द्वारा आप एक अलौकिक विश्व का अनुभव कर सकते हैं।

धरणा - ६५

पद्घुंघरूताल ध्यान

प्रिय साधको!

घुंघरू भजन में भी बजता है और कव्वाली में भी। वह तो केवल बजना जानता है, खनकना जानता है, माहौल और महफिल को आनंदित करना जानता है, उसे जाति-पाति, देश काल या पाप-पुण्य से कुछ लेना देना नहीं। इसीलिए तो मैं उसे ब्रह्म जैसा कहती हूँ।

अगर आपको नाचने का शौक है तो पद्घुंघरूताल ध्यान आपके लिए एक उत्तम प्रकार की ध्यान विधि साबित हो सकती है।

घुंघरू एक आनंदप्रद उपकरण है। उसे वाद्य कह भी सकते हैं नहीं भी कह सकते। आधुनिक भाषा में अगर कहें तो उसका स्थान आज साइड रिथम में आ गया है। परंतु मेरे अनुभव से मैं कहती हूँ कि वह पैरों की टेस और टुमकी के द्वारा ताल भी पैदा करता है और संगीत भी। ताल और संगीत एक भी है और भिन्न भी। स्वर, ताल और नृत्य मिलकर संगीत का स्वरूप पूर्ण होता है।

घुंघरू मुझे लगता है कि घुंघरू झांझर का विशेष रूप है। वह झांझर की संगीत के लिए आविष्कार की गई एक नई आवृत्ति है। वह नारी का श्रृंगार भी है। मन को आनंद देने वाला एक संगीतपूर्ण गहना भी है और नृत्य में सहयोग करने वाला एक सुन्दर, सहज एवं छोटा सा वाद्य भी।

अन्य वाद्यों को उठाकर लंबे समय तक नाचना कठिन हो जाता है। परंतु घुंघरू कभी बोझ नहीं बनता, वह तो उत्साह बढ़ाता है। प्रत्येक मनुष्य को इससे कुछ प्रेरणा लेनी चाहिए।

संस्कृत में घुंघरू को घर्घरिका कहते हैं। संगीत रत्नाकर घुंघरू के नाद के छः प्रकार बताता है और संगीत शास्त्र कुल मिलाकर चौदह प्रकार की ध्वनियाँ बताता है। प्रत्येक ध्वनि ध्यान का माध्यम बन सकती है।

झांझर की धुन मन को प्रसन्नता देती है। और घुंघरू की आवाज़ रोम रोम को नाचने के लिए प्रेरित करती है। घुंघरू का वजन, बंधन और उसकी धुन नर्तक को जोश बख्शाती है।

मनुष्य ने संगीत को संप्रदायों में बांट दिया परंतु वह ताल वाद्यों को सांप्रदायिक नहीं बना पाया। ताल ध्वनि तो ब्रह्म जैसी है, सर्वसाक्षी है, घुंघरू को पेशेवर नाचने वाली पैरों में बांध ले या मीरा बांधे उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह तो प्रकृति की भांति सर्वसाक्षी रहकर नृत्य का और संगीत का सहयोग कर देता है।

मैं जब कथक नृत्य सीख रही थी, तब मेरे डांस मास्टर ने मुझे डोरी में गूँथे गए घुंघरू पैरों में बांधाना सिखाया था। वह घुंघरू आज भी मेरे पास हैं। मैंने उन्हें संभालकर रखा है। जब कभी उनका स्पर्श होता है, या उनका स्थानांतर होता है तब क्षणभर के लिए भी वे माहौल को मीठी खनक से भर देते हैं और कला की ऊमदा स्मृतियों का स्मरण कराता है।

घुंघरू के दाने संदेश देते हैं कि मनुष्य अगर आनंदित होना चाहता है अथवा किसीको आनंदित करना चाहता है तो उसे अपने इर्द गिर्द थोड़ी जगह की आवश्यकता है। प्रत्येक मनुष्य को अपने लिए थोड़ी स्पेस अखंड रखना चाहिए। आरक्षित रखनी चाहिए। मनुष्य को एक मुक्त बंधन की आवश्यकता है। धातु के अधखुले आवरण में धातु के दाने बंद भी रहते हैं और मुक्त भी। यह चिंतन थोड़ा समझने जैसा है। इसे एक प्रकार का निरासक्त बंधन कह सकते हैं।

घुंघरू के दाने उनके रक्षा कवच से चिपक नहीं जाते हैं। घुंघरू की खोल भीतर के दानों को बिखर जाने से बचाती भी है। बजने में उसकी सहायता भी करती है और फिर भी चिपकती नहीं है। यह एक सम्यक बंधन है, यह एक सुरक्षा है जिसमें दाने मुक्त रूप से खेल भी सकते हैं, सम्यक टकराहट से बज भी सकते हैं, सबको आनंदित भी कर सकते हैं और अपने आवरण में सुरक्षित भी रहते हैं।

एक ध्यानी को घुंघरू, नर्तक का वह गहना जीवन जीने की कला का सम्यक दर्शन कराता है। कुछ चिंतन सिखाता है। कुछ विशेष सोच के लिए प्रेरित करता है। वह कहता है कि संसार में सुरक्षित रहो, दूसरों को सुरक्षित रखो, द्वैत में भी अद्वैत स्थापित करो, और जीवन का आनंद

ले लो।

न केवल दाने घुंघरू है, और न ही आवरण को घुंघरू कह सकते हैं परंतु समानधर्मा दो चीज मिलकर और ऐसे समान प्रकृति के कई घुंघरू एक सूत्र में सम्यक रूप से बंधकर नर्तक के पैरों की शोभा, वाद्य और ध्यान का माध्यम बन जाता है। वह घुंघरू सम्यक रूप से संगठित रहकर दिव्य संगीत ध्वनि, प्रसन्नता और नृत्य में प्राण फूंकने वाला उपकरण बन जाता है।

अकेले दाने या अकेला आवरण कुछ भी नहीं कर सकते। एक आवरण और एक दाना मिलकर ध्वनि उत्पन्न कर सकते हैं परंतु वह ध्वनि बहुत मंद होगी। आवरण और दाने की जुगलबंदी से एक छोटी सी घंटी बनती है। और ऐसी अनेक घंटिकाएं मिलकर नर्तक के पैरों के घुंघरू बनते हैं। और सुंदर एवं ध्वनि उत्पन्न करके नर्तक तथा उस ध्वनि को सुनने वाले अन्य दर्शक या श्रोता के मन को परम तत्व के साथ एकाकर कर देते हैं।

घुंघरू की शास्त्रीय उपयोगिता के उपरांत भी अगर उसपर विशेष चिंतन किया जाए तो वह परमात्मा और उसकी अब्दुत संसार रचना का बोध कराते हैं।

परमात्मा ने मनुष्य को आनंद फैलाने के लिए आनंद बांटने के और आनंद पाने के लिए श्वास के सूत्रों में बांधकर पृथ्वी पर भेजा है परंतु मनुष्य भूल जाता है सत्य को, चूक जाता है और आनंद खो जाता है। आदमी बिखर जाता है, टूट जाता है, परंतु ढंग से बज नहीं सकता; यह उसका दुर्भाग्य है।

ऐसे टूटे हुए दिल वाले कवि घुंघरू को प्रतीक बनाकर गीत लिख देते हैं। एक मनोपीड़ा आनंद देने वाले वाद्य में हीनता, मजबूरी और करुणा दूढ़ने लगता है। -

घुंघरू की तरह बजता ही रहा हूँ मैं.....

मैं कहती हूँ कि मनुष्य बजने के लिए ही है। लड़ने के लिए नहीं है। आपको सुर और ताल में बजने के लिए ही परमात्मा ने बनाया है। आपका मनुष्य देह शिव का डमरू, नारद की वीणा, या मीरा के घुंघरू से कोई कम नहीं हैं।

अगर बजना ही आपकी नियति है तो घुंघरू क्यों नहीं बन जाते? क्यों छेड़ रहे हो दिन रात करुण और भयानक स्वरों को। मस्ति से बज लो, आनंद से बज लो। आपमें से आनंद को बहने दो। दूसरों को भी उस आनंद से आनंदित होने दो।

एक कलाकार क्या करता है? सच्चे कलाकार को दूसरों को खुश करने की कोशिश नहीं करनी पड़ती, वह तो अपनी कला के साथ तल्लीन हो जाता है। वह ध्यानस्थ हो जाता है अपनी कला में। तब प्रसन्न होने लगता है। धीरे धीरे उसकी प्रसन्नता प्रेक्षकों में बहने लगती है और पूरा ऑडियन्स आनंदित होने लगता है, तालियाँ बजने लगती हैं, वाह वाह होने लगती हैं।

प्यारे साधको!

घुंघरू की भांति साक्षी बनना सीख लो। फिर सारी शिकायतें मिट जाएंगी। जब ऐसा हो गया तब आपका एक ही परम धर्म बचेगा और वह होगा बजना। और प्रसन्न रहना। सिर्फ मधुरता को उत्पन्न करना। भिन्न भिन्न घुंघरूओं की आवाज़ में मिठास थोड़ी कम ज्यादा हो सकती है परंतु वह आवाज़ कर्कश कभी नहीं होती।

भक्त, भांड, नर्तक और ध्यानी सभी घुंघरू से आनंदित होते आए हैं और आनंद बाँटते रहते हैं। परमात्मा भले कहीं भी रखे, आपकी नियती भले कुछ भी हो परंतु घुंघरू जैसे बन जाओ। हर हाल में खुश रहना सिखाता है घुंघरू। वह मौका मिलते ही बजने लगता है। आप भी मौका मिलते ही उत्सव मनाना सीख लो। दूसरों को आनंदित होने में, और आनंदित करने में सहयोग करो। आनंद को बढ़ाना सीखो।

इस पृथ्वी का नाम भले मृत्युलोक हो परंतु जीवन का ज्यादा से ज्यादा आनंद आप यहाँ ही उठा पाएंगे। मृत्युलोक को आनंद लोक बना दो।

प्रिय साधको!

घुंघरू एक साइड रिथम है, एक उपवाद्य है, एक छोटा सा उपवाद्य, वह इतना सुंदर बोध दे सकता है तो आप तो मनुष्य हैं। परमात्मा की सर्वोत्तम रचना हैं। विश्व के किसी धर्म अथवा धर्म शास्त्र ने परमात्मा को शोकरूप, दुःख रूप, पीड़ा रूप या आतंक रूप नहीं कहा है। सभी धर्म परमात्मा को करुणावान और आशीर्वाद बरसाने वाले मानते हैं।

आशीर्वाद कौन दे सकता है? जिसका हृदय प्रेम और करुणा से छलकता है? जो भीतर से तृप्त है, प्रसन्न है, प्रेमपूर्ण है और आनंदित है वही आशीर्वाद बरसाने के लिए सक्षम है। मैं कहती हूँ कि हर हाल में खुश रहना सीख लो घुंघरू से।

एक बार कबीर को किसी ने पूछा - आप तो राम भक्त हैं, वैष्णव हैं, और आपके आस पास तो कसाई रहते हैं। आपको तकलीफ नहीं

होती!

कबीर ने एक दोहे में जवाब दिया –

कबीरा का घर चौक में, गलकट्टू के पास।

करेगा सो भरेगा बंदा, तू क्यों हुआ उदास ?

यह एक साक्षीभाव की अवस्था है। ऐसी समझ और अवस्था ध्यान से घटित होती है। मैं कहती हूँ, गलकट्टू कहाँ नहीं हैं? हिंसा कहाँ नहीं है? हिंसा के रूप और कत्ल करने के ढंग भिन्न भिन्न हैं। ऐसे माहौल में विशेष प्रसन्नता और आनंद को फैलाने की अनिवार्यता है। स्वार्थ, भ्रष्टाचार और विविध प्रकार के आतंक का जब नंगा नाच हो रहा है ऐसे माहौल में अगर हर समझदार इंसान घुंघरू की भांति बजना सीख लेगा तो समाज में फिर से मधुर ध्वनियों की गूंज उठेगी।

प्यारे साधको!

घुंघरू का दर्शन उसकी खनक का श्रवण और उसको पहनना सबकुछ अच्छा लगता है। पैरों में घुंघरू बजते ही मैंने वृद्ध नर्तकों के पैरों को भी एक सशक्त कलाकार की भांति थिरकते हुए देखे हैं। आपको यदि नाचना पसंद है, ध्वनि और ताल पसंद है और अगर संभव है तो बांध लो पैरों में घुंघरू और खो जाओ कुछ देर के लिए मीरा की भांति अपने परमात्मा में।

अपने घर में घुंघरू के दाने की भांति थोड़ी स्पेस रख लो अपने लिए जहाँ आप अपने एकांत में निर्भयता से पदघुंघरूताल ध्यान के साथ आनंदित हो सकें। जब एक बार आपने चैतन्य अथवा मीरा की भांति नाच नाच कर ध्यान में डूबना सीख लिया तब बाहर की ओर से आती हुई नकारात्मकता का सामना आपको नहीं करना पड़ेगा। वह सब अस्तित्व संभाल लेगा।

धरणा - ६६

नृत्य ध्यान

प्रिय साधको!

ध्यान और नृत्य का गहन संबंध है। ध्यान सूक्ष्म नृत्य है और नृत्य सक्रिय ध्यान है। सामान्य रूप से ध्यान में क्रिया शून्यता होती है। सर्व प्रकार की क्रियाओं से पार जाना है ध्यान। परंतु कुछ ध्यान विधियाँ अपवाद रूप हैं। इनमें से एक ध्यान है नृत्य ध्यान। जिसमें क्रिया में भी अक्रिया प्रगट होती है। नृत्य की प्रक्रिया के द्वारा साधक ध्यान की गहनता में प्रवेश कर सकता है।

मनुष्य देह पंचमहाभूत का मेल है। उनमें से जल तत्व और वायु तत्व का तो स्वभाव ही है, चलना, बहना, उड़ना। वह चलत्व प्रकृति मनुष्य को नाचने के लिए विवश कर देती है। उपरांत उसके भीतर बैठा हुआ ब्रह्म जिसे लोग जीवात्मा कहते हैं, वह भी सच्चिदानंद स्वरूप है। वह आनंद रूप होने से आनंदप्रिय है और आनंद का दाता भी है। अर्थात् आप आनंद का धाम भी हैं और आनंद का उद्गम भी।

अब शायद आप समझ गए होंगे कि किसी भी संगीत बजते ही मनुष्य के अंग क्यों हिलने लगते हैं? क्यों ताल देने लगते हैं? वह क्यों झूम उठता है? वह क्यों नृत्य प्रिय है?

हाँ, सौ में से एकाद मनुष्य ऐसा होता है कि जिसे नृत्य पसंद नहीं होता। इसका भी कारण है, शरीर तो स्थूल है उसे जब तक भीतर के आत्मचैतन्य से प्रेरणा नहीं मिलती तब तक वह नहीं झूम सकता। जिसके चैतन्य जगत पर परदा है और जिसे जीन्स में नृत्य और संगीत प्रेम मिला नहीं है, ऐसे लोग नाचने से शर्माते हैं, दूर रहते हैं नृत्य से।

दूसरों को नाचते हुए देखकर ऐसे लोगों को आश्चर्य होता है। उनके भीतर के वायु और जलतत्व भीतर के पदार्थ को चलित रख सकता है। परंतु जब तक ब्रह्मानंद का स्रोत भीतर प्रस्फुटित नहीं होता, तब तक वे दोनों तत्व शरीर में केवल पदार्थ बने रहते हैं। उनकी जीवंतता पूर्ण रूप से खिल नहीं सकती।

दूसरों को नाचते हुए देखकर कुछ लोगों को आश्चर्य होता है। नाचता हुआ आदमी उन्हें पागल अथवा बेशर्म लगता है। दूसरों को नाचता हुआ देखकर चित्र विचित्र भावों से जिसका मन भर जाता है वह आदमी अधूरा है।

मैं कहूँगी कि दुनियां में आकर जो मनुष्य कभी झूमा नहीं, कभी नाचा नहीं, कभी गाया नहीं तो उसका जीवन अधूरा है। वह चूक गया जीवन का सही आनंद।

प्यारे साधको !

जिसने जीवन में जीभर के नाच लिया वह आदमी एक अर्थ में कुछ क्षणों के लिए भी मुक्त हो गया। जो मनुष्य मस्ती से नाच सकता है वही स्वतंत्रता की बेड़ियों को काट सकता है, संसार की गुलामी के सामने आवाज़ उठा सकता है और मुक्ति की ओर चल पड़ता है।

मेरे अनुभव से नाचने की क्षमता वाला मनुष्य सफल क्रांति कर सकता है।

कुछ लोग चाहने पर भी, नाचना जानने पर भी नहीं नाच सकते हैं। क्यों ? क्योंकि वहाँ अहंकार बाधा बनता है। उसका पद, धन और स्थान कभी कभी आनंद में भी विघ्न बन जाता है।

जैसे कि एक पुलिस अफसर ने जिंदगीभर रिवाल्वर उठाई है, उसके हाथ में अगर आप डांडिया थमा देंगे तो डांडिया उठाना उसको बहुत भारी लगेगा। उसके मन ने ग्रंथि बना ली होती है कि आइ.ए.एस. या आइ.पी.एस. ऑफीसर नाच नहीं सकते।

वे समझते हैं कि नाचने से हम सामान्य बन जाएंगे। अगर हम नाचेंगे तो फिर लोग हमारे अनुशासन में नहीं रहेंगे। उनकी मान्यता होती है कि आम लोग नाचते हैं, खास लोग नहीं नाचते।

उन्हें कौन बताए कि नाच नाच कर आप असाधारण बन जाएंगे। आप नृत्य से दूर रहकर बाहर से भले कुछ अलग दिखने की कोशिश करो परंतु अंदर से अति साधारण रह जाएंगे।

सबलोग नाच रहे हैं, आपका दिल भी भीतर से झूम रहा है फिर भी आप नाचने का साहस नहीं कर सकते हो तो उस क्षण में आप जैसे दरिद्र, दीन और डरपोक कोई नहीं है। ऐसे क्षणों में आप कुछ बहुमूल्य और अद्भुत गवाँ रहे हो।

प्यारे साधको !

नृत्य आपकी भीतरी संभावनाओं को समग्र रूप से प्रगट कर देगा। वह आपको असाधारण बना देगा, एक बार नाच कर तो देखो ! अंजान भीड़ में मिलकर भी मौका मिले तो लगा लो तुमकी !

मुझे बराबर याद है। जुनागढ़ में हमारे आश्रम की स्थापना वक्त (करीब पच्चीस साल पहले), गोंडल के एक निवृत्त प्रोफेसर आए थे जिन्होंने शंकराचार्य के अद्वैतवाद पर पीएच.डी. थे। उसके उपरांत दुनियांभर की पढ़ाई करके मस्तिष्क का भार बहुत बढ़ा लिया था। और भी बहुत सारे महमान आए थे। जुनागढ़ जिले के पुराना स्टेट 'पाजोद' वहाँ के एक समय के राजा और कविजगत में प्रसिद्ध रुस्वा मज़लूमी साहब भी आए थे। वे अच्छे सर्जक होने से साहित्यिक दृष्टि से मुझसे बहुत करीब थे। उसके उपरांत अनेक कवि, संगीतकार और साहित्यकार भी वहाँ मौजूद थे।

पूरे कार्यक्रम के दौरान कुछ भक्तों ने रास-गरबे का प्रोग्राम भी बना लिया। वे लोग नृत्य ध्यान में जुड़ने के लिए तैयार नहीं थे। उन्हें बहुत संकोच हो रहा था। तब सबसे पहले मैं जुड़ गई साधकों के साथ नाचने में और मेरे प्रेमाग्रह के वश होकर धीरे धीरे वे लोग भी जुड़ गए। वे लोग उनकी जिन्दगी में पहली बार नाच रहे थे।

मैंने उनके नृत्य का बराबर दर्शन किया। अच्छा नाच सकते थे, बहुत प्रसन्न दिखते थे, स्टेप भी बराबर ले सकते थे, बहुत सारे कवि भाव जगत में खो गए थे। केवल मनोग्रंथि के कारण वे लोग जिन्दगीभर नृत्य से दूर भागते रहे।

फिर मैंने उनसे कहा कि आप कैसे कवि, संगीतकार और अद्वैतवादी हैं कि जो खुलकर नाच भी नहीं सकते ! तब उन्होंने कहा कि हमें हमारे स्थान के कारण क्षोभ और संकोच होता था परंतु आज आपने हमारे निरर्थक आवरणों को हटा दिया।

उनमें से कुछ लोगों ने तो धरती पर से विदा भी ले ली है। कुछ लोग कभी कभी मिलने के लिए आ जाते हैं परंतु हम जब भी मिलते हैं तब उन आनंद की क्षणों को बहुत याद करते हैं।

नाचना सीखना या सिखाने का मतलब यह नहीं करना कि जो नृत्य के विशेष प्रकार सिखाए जाते हैं, वह सीखना या एकेडेमिक शिक्षा लेना। नाचना सीखने का मतलब यहाँ नृत्य के किसी शास्त्रीय ज्ञान से प्रकार से या विशेष मुद्राओं से नहीं है।

प्यारे साधको !

नृत्य भी छंद जैसा है। पहले नृत्य जन्मा बाद में उसके बारे में उसे और सुंदर बनाने के लिए विविध राष्ट्र और संस्कृतियों के अनुसार उसका शास्त्र जन्मा।

संगीत शास्त्रों के द्वारा मनुष्य को उसका, उसके सिद्धांतों और नियमों का ज्ञान देकर उसको विशेष विद्या के रूप में विकसित करने का विविध विद्वानों के द्वारा एक स्तुत्य प्रयत्न हुआ। और विशेष अभ्यास, रुचि और सफलता के अनुसार विद्यार्थी को खास पदवी देकर उसे समाज में सन्मान एवं आजीविका प्राप्त हो ऐसा व्यवहार कदम उठाया गया। परंतु अफसोस की बात है कि समय के साथ डिग्रियाँ बिकने लगीं और

विद्या की उपासना के स्थान शिक्षा में से केवल ब्रेड-बटर ढूँढने का प्रायास हुआ।

प्यारे साधको!

एक बात हमेशा याद रखना! पहले विद्या और कला को पूजना बाद में शास्त्र को। आप कहेंगे कि विद्या का स्रोत तो शास्त्र ही है ना! परंतु मैं कहूंगी – ना। विद्या का जन्म सर्वप्रथम मनुष्य के हृदय में होता है। तब वह उस विद्या की विशेष शाखा अथवा कला के जगत में कार्य करने को उत्सुक होता है, बाद में शास्त्र उसकी मदद करते हैं। और उपाधियाँ अंत में आती हैं।

मैं कहती हूँ कि जो नाच सकता है वह संसार में सबसे बड़ा भाग्यवान है। नृत्य से दो बातें घटती हैं; एक तो आप बाहरी दुनिया के सुख दुःख को भूल जाते हैं और दूसरा संसार के पार जा रहे होते हो।

नाचने का अर्थ है आनंद का प्रगटीकरण, आनंद को बांटना, आनंद का प्रचारक बनना, आनंद का आपके पक्ष में आ जाना। जब आदमी नाचने लगता है तब उसका अहंकार, मन, मति, पद, प्रतिष्ठा और सब प्रकार के भेद खो जाते हैं।

नृत्य में जो मस्त हो जाता है और बाहरी दुनियाँ को भूल जाता है, वह आनंद गोत्र की संतान रहता है।

नाचने से एक साथ बहुत कुछ घटने लगता है। पहली बात तो यह कि मनुष्य की बहुत सारी देहिक ऊर्जा निरर्थक जाती है। विज्ञान और तकनीकी उपकरणों के आविष्कार की वजह से मनुष्य की बहुत सारी ऊर्जा जमा रहती है। नृत्य से उस ऊर्जा का उचित उपयोग हो जाएगा। और वह भी एक आनंद उत्सव में। दूसरा आपके भीतर प्रसन्नता का प्रभाव खिल उठेगा। आपकी आंतरिक शक्तियाँ विकसित होने लगेंगी। आपकी ऊर्जा का उर्व्वीकरण भी होगा। आप तनाव मुक्ति का अनुभव करेंगे। नृत्य से मन को प्रफुल्लित और शरीर को विशेष फुर्तीला महसूस करेंगे। शरीर के आंतरिक अंग ज्यादा स्वस्थता का अनुभव करेंगे।

नृत्य के साथ बहती हुई प्रसन्नता के कारण अंतःस्त्रावी ग्रंथियाँ विशेष रूप से जीवन दायक रसों को छोड़ने लगेंगी। आपके नकारात्मक रसायण कम हो जाएंगे। नाचने से आपको अचानक पता चलेगा कि मैं सिर्फ मेरे साथ भी खुश रह सकता हूँ।

नृत्य के द्वारा आपको अनुभव होने लगेगा कि आनंदित होने के लिए सिर्फ नृत्य और एकांत काफी है। मैं भीड़ के बिना भी आनंदित रह सकता हूँ। मैं ऊर्जा का भंडार हूँ और आनंद का धाम हूँ।

प्यारे साधको!

आपके घर में और तिजोरी में भरी हुई चीजों से अनेक गुनी खुशी नृत्य के द्वारा मिल सकती है। और वह खजाना चौबीस घंटे आपके साथ है, आपके रोम रोम में भरा है। आप जब चाहें तब तुमकी लगाकर आनंदित हो सकते हो, आनंद को बांट सकते हो।

प्यारे साधको!

इस सारी बातों से मैं आपको नृत्य ध्यान के लिए प्रेरित करना चाहती हूँ। मेरे शब्दों पर गौर करना, केवल नृत्य के लिए नहीं परंतु मैं आपको नृत्य ध्यान के लिए प्रेरित करना चाहती हूँ। मैं यह चाहती हूँ कि आपका नाचना ध्यान बन जाए, आपके नृत्य से आप अनहद में चले जाओ।

मेरी नृत्य की बातों को किसी शास्त्रीय नृत्य से मत जोड़ देना यहाँ मैं कोई कथक, भरतनाट्यम, कुचीपुड़ी, मोहिनी अट्टम या कथकली नृत्य की बात नहीं कर रही हूँ। मैं सिर्फ नृत्य की नहीं परंतु नृत्य ध्यान की बात कर रही हूँ।

नृत्य को जानना, नृत्य को सीखना, नृत्य करना, नृत्य देखना और नृत्य में डूब जाना; इन सारी बातों में बड़ा फर्क है। शास्त्रीय ढंग से जहाँ नृत्य सीखने की बात आती है वहाँ हृदय से ज्यादा मस्तिष्क का चंचुपात रहता है। वहाँ नृत्य एक बौद्धिक शारीरिक और शास्त्रीय आयास प्रयास बन जाता है। वहाँ कुछ बातें नृत्य पिपासू पर थोपी जाती, थोपनी पड़ती है। कुछ बातें बेमन भी सीखनी पड़ती हैं, कुछ खास प्रकार की भाव भंगिमाओं में शरीर और अंतरचेतना का सहयोग नहीं मिल रहा है तो भी एक तपश्चर्या की तरह फ़रजियात सीखना पड़ता है, करना पड़ता है। कभी कभी यह तपश्चर्या पनिशमेंट जैसी लगती है।

शरीर को ज्यादा तकलीफ देने के बावजूद भी जब आकर्षक मुद्रा नहीं बनती तब नृत्य लंगड़ा या अधूरा दिखता है और अन्य की तुलना में फीका पड़ता है। ऐसी स्थिति में कठिन रियाज़ करना पड़ता है।

कभी कभार अतिशय मेहनत करने पर भी सफलता नहीं मिलने से नृत्यकार का मानसिक तनाव बढ़ जाता है। नृत्यकार और नृत्यांगना बनने की ख्वाहिश में कई युवक युवतियों का भविष्य धुंधला बन जाता है।

प्यारे साधको !

अगर आप सही अर्थ में एक समझदार मनुष्य हैं और नृत्य के प्रेमी भी हैं तो मेरी एक बात को हमेशा याद रखना और इस बात का स्मरण करके अपने बच्चों पर शास्त्रीय नृत्य को थोपने की कोशिश कभी मत करना। अगर उसने नृत्य सीख लिया तो बहुत अच्छी बात है, अगर बाहर से नहीं सीख पाया तो ताने देकर उसके भीतर से प्रस्फुटित होना वाले सहज नृत्य का गला मत घोंट देना।

प्रत्येक नाचने वाला गीपीकृष्णन, बिरजूमहाराज, सितारादेवी या हेमामालिनी नहीं बन सकते। हर कोई प्रभुदेवा या ऋत्विक् नहीं बन सकता। कुछ लोग कला के आशीर्वाद लेकर जन्मे हुए होते हैं। परंतु इसका मतलब यह नहीं कि उनके जैसा नहीं नाच पाए तो नृत्य छोड़ दे।

प्रिय साधको !

मैं बचपन से नृत्य प्रिय रही हूँ। आज भी ध्यान शिबिरों में साधकों के साथ मेरा नाचना सहज हो जाता है। नृत्य की शास्त्रीयता जानने के लिए वडोदरा के एक नृत्य विशेषज्ञ से दो तीन साल तक कथक नृत्य की तालीम ली थी। परंतु उससे मुझे इतना बोध हो गया कि केवल प्रोफेशनल नृत्यांगना बनने के लिए शास्त्रीय तालीम की आवश्यकता है। मीरा या चैतन्य महाप्रभु को अथवा नारद या तुम्बरू को नाचने के लिए किसी शास्त्र की जरूरत नहीं है।

मेरे अनुभव के आधार पर मैं इतना कह सकती हूँ कि शास्त्र आपके नृत्य को सौन्दर्य बक्षेगा, ध्यान आपके नृत्य में समग्रता, सत्यता और शिवत्व भर देगा।

नृत्य पहले एक सहज आनंद है, एक मौज है, एक मस्ती है, बाद में एक कला। नृत्य की शास्त्रीयता आपको वाद्य की गुलाम बना सकती है। एक अच्छी से अच्छी नृत्यांगना के लिए साज और आवाज के बिना नाचना संभव नहीं है।

नृत्य के बोल या तोड़ा बोलने वाले के बिना नृत्यकार बेचारा बन जाता है। परंतु हाथ में करताल, चीपिया और मंजीरा लेकर नाचने वाला भक्त नृत्य के लिए कभी पराधीन या बेचारा नहीं बनता।

मीरा शास्त्र के बल पर नहीं प्रेम के बल पर नाचती है। भाव और प्रेम से नाचने वाला सदा स्वतंत्र रहता है। सदा मस्त और आनंदित रहता है। उन्हें कभी प्रेक्षकों की गरज नहीं रहती। उसके भीतर कभी स्टेज शो या तालियों की भूख नहीं जागती। वे साज या गायक के बिना कभी डिप्रेशन में नहीं आ जाते।

श्री कृष्ण, ब्रज की गोपिया, मीरा, भक्त नरसिंह मेहता, चैतन्य महाप्रभु, या कोई भी सूफी संत कभी किसी भी शाला महाशाला नृत्य सीखने के लिए कभी नहीं गए थे। परंतु लोग उनपर आज पीएच.डी. कर रहे हैं।

मैंने वडोदरा के परफोर्मींग आर्ट्स फैकल्टी में कई लड़कियों को नाचते हुए देखा है। कोशिश करने पर भी गोपी जैसा निर्मल और सहज भाव नहीं आ सकता उसके चेहरे पर, क्यों ? क्योंकि वह अनुसरण का विषय नहीं है। ऐसे भावों के लिए आपके पास गोपी जैसा हृदय, भोलापन और प्रेम चाहिए। रोम रोम में राम का अनुभव चाहिए। गोपी जैसी धुन, भाव, निर्मलता और तल्लीनता चाहिए।

कथक का शास्त्र एम.म्यूज के पेपर में उतार देने से नृत्य में भाव नहीं आ जाएगा। वह तो थ्योरी है। सही नृत्य ध्यान है। और प्रत्येक ध्यान थ्योरी का नहीं प्रैक्टिकल का विषय है।

मेरे साधकों को मैं कहूँगी कि नाचते वक्त आप नृत्य का आह्वान करो ऐसा नहीं परंतु आप नृत्य यज्ञ की आहूति बन जाओ। मिटा दो खुद को। भूल जाओ अपने बाहरी अस्तित्व को। खो जाओ नृत्य प्रवाह में। विलीन हो जाओ नाच में, नाचते नाचते नाच बन जाओ।

एक बार एक सूफी संत नाच रहा था। किसी साम्प्रदायिक मानस के आदमी ने उसे पूछा – ‘कुछ तस्बी माला रटते हो ? कभी मंदिर मस्जित में जाना, बंदगी करना, सब छोड़ दिया लगता है!’ फकीर ने कहा – सच है! सबकुछ छूट गया। अब तो मैं नाचता हूँ और अल्लाह दर्शन के लिए आते हैं। उस आदमी ने कहा – “ये सब तेरा भ्रम है, कुरान बुरान सब छोड़ दिया है तो नर्क में जाएगा।” संत ने कहा – “अगर ऐसा हुआ तो मैं नाच नाच कर नर्क को भी स्वर्ग बना दूँगा।”

इस बात को कहते हुए मेरी एक सूफी रचना याद आ रही है –

हम हो गए मस्ताने मस्ती में डूब कर
अब तू ही मरे आस पास नाच झूम कर

मैंने तस्बी को तोड़ा गीता कुरान छोड़ा
वुत काबा से जुड़ा मन का नाता तोड़ा

अवरुकना भी नहीं चलना भी नहीं
अवटुटना भी नहीं अब जुड़ना भी नहीं

.....अब तू ही मरे आस पास नाच झूम कर

मेरे भीतर ही मैंने मीरा का नाच देखा
इसू मंसूर मूसा महम्मद साथ देखा
तू जो चाहे तो आज थोड़ी मस्ती भी लेजा
मेरी रगरग में खोजा मेरे दिल में समाजा

.....अब तू ही मरे आस पास नाच झूम कर

लकीरें मिट चुकी हैं मेरे हाथों की मौला
दरारें भर चुकी हैं मेरे माथे की मौला
मुकद्दर है बेचार मुसब्बर है आवारा
“मोहिनी” मुझको मेरी मस्तीने सवांरा

.....अब तू ही मरे आस पास नाच झूम कर

यह कोई कल्पना की बात नहीं है। ऐसी चीजें अध्यात्म की गहन अनुभूतियों में से प्रगट होती हैं।

आपका नृत्य अन्य उपकरणों का मोहताज नहीं होना चाहिए। फिर भी मैं स्वीकार करती हूँ कि नृत्य ध्यान में उत्तम संगीत का सहारा मिल जाए तो ध्यानी का शरीर पूर्ण रूप से मुक्त रहता है। वह समग्रता से नृत्य ध्यान में डूब सकता है। संगीत से उसका उत्साह बढ़ता है।

यहाँ मैं कुछ शब्द नई पीढ़ी के लिए कहना चाहूँगी। आज का युवाधन ज्यादा स्वतंत्र, मुक्त और निर्दंभी है। वे नृत्य ध्यान के द्वारा बहुत जल्द ही पहुँच सकते हैं ध्यान की ऊँचाईयों पर। परंतु उसे दिशा देने की जरूरत है।

नई पीढ़ी के पैर हमेशा थिरकते रहते हैं। वे नाचने के लिए बहुत उत्सुक होते हैं। टी.वी. पर प्रसारित संगीत और नृत्य के कार्यक्रमों का और विशिष्ट कोम्पटीशन प्रोग्राम्स का बहुत बड़ा योगदान है इसमें। परंतु नाचने में आज के युवक युवतियाँ शब्द और संगीत को ढंग से पसंद करना सीख लें, यह बहुत जरूरी है, वे थोड़े सजग हो जाएं नृत्य को ध्यान बनाने के लिए और संगीत के असर को जानना सीख लें तो उनके नृत्य के द्वारा एक चमत्कार घट सकता है। वह चमत्कार उनके भीतर ही घटेगा।

मैं कहूँगी कि नृत्य के प्रकारों में न पड़ो। शास्त्रीय नृत्य हो, डिस्को डान्स हो या पौप डान्स – कौन नाच रहा है, इससे ज्यादा संबंध न रखो। आपको माइकल जैक्सन नहीं बनना है। माइकल जैक्सन उस काम के लिए ही दुनियाँ में आया था। आपकी नियति कुछ और है। आपको स्वयं को आनंदित करने के लिए ही नृत्य में प्रवेश करना है। वह आनंद अगर जाग्रतिपूर्ण होगा तो परमात्मा का पर्याय बन जाएगा।

पता नहीं लोगों को क्या हो गया है? परंतु उनकी पसंद बहुत निम्न कक्षा की होती जा रही है। उनकी साहित्यिक समझ बहुत कच्ची सिद्ध हो रही है। याद रहे! शब्द ब्रह्म भी है, बकवास भी। आप बकवास की दुनियाँ में जाना क्यों पसंद कर रहे हो?

कुछ दिन पहले मैंने अखबार में पढ़ा कि विश्व की श्रेष्ठ यूनिवर्सिटियों में जिसका नाम है ऐसी महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ यूनिवर्सिटी में टपोरी डे मनाया गया। मैं उत्सवों के विरोध में नहीं हूँ। मैं तो कहती हूँ कि उत्सव का एक भी मौका मत गंवाओ। परंतु कुछ पसंद ही करना है तो ऊँची पसंद क्यों न रखें?

एक बार एक ट्रेन में आमने सामने की सीट पर एक संत और एक गरीब आदमी बैठा था। कुछ देर के बाद गरीब आदमी ने अपने बक्से में से रोटी निकाली और कागज पर लेकर खाना शुरू किया। वह रोटी का टुकड़ा तोड़ता जाता था और किसी अदृश्य चीज में डूबो डूबोकर उसे खा रहा था। उसकी हरकत देखकर संत ने पूछा कि तेरे पास रोटी के सिवाय तो कुछ है नहीं तो किसमें भिगोकर खा रहा है? उस आदमी ने कहा कि मैं चटनी की कल्पना करके उसमें रोटी का टुकड़ा डुबो रहा हूँ। संत हंस पड़ा और कहा कि तुझे कल्पना ही करनी है तो चटनी की क्यों कर रहा है? रबड़ी की कर ना!

बात मनुष्य की मानसिकता की है, उसके विचारों की है, उसकी पसंद की है। मैं कहती हूँ कि उत्सव का बहाना बनाना ही है तो टपोरी डे क्यों? जिनीयस डे क्यों नहीं? हमारे पास जीनियस पर्सनालिटियों की कोई कमी नहीं है। अगर आपके पास क्षमता है तो अच्छी चीजों में से ज्यादा मज़ा ले सकते हैं। आपको टपोरी-डे पर नहीं अटकना है।

योग्य मार्गदर्शन, माहौल और दिशा के अभाव में युवा पीढ़ी के पास सबकुछ होने पर भी कहीं कुछ कमी दिखाई दे रही है। अगर ऐसा

नहीं होता तो दबंगगीरी और गांधीगीरी फैशन नहीं बनती। 'मुन्नी बदनाम हुई' और 'शीला की जवानी' इस वर्ष के टोप टेन गानों में नहीं होते।

प्यारे साधको!

मैं कोई समाज सुधारक होने का दावा नहीं कर रही हूँ, ना मुझे कोई बड़ा उपदेशक बनना है; बात अपनी अपनी पसंद की है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी पसंद के लिए स्वतंत्र है। मेरे पास कोई संकुचित मानस या रूढ़िवादी मानस भी नहीं है।

मुझे पता है कि आज के युवक युवतियाँ नाचने के बहाने ढूँढते हैं। उन्हें जोशीली बीट्स और ट्यून मिल गई तो लगते हैं नाचने। आज के थर्डक्लास गीतों की सफलता में गीत की सफलता नहीं है बीट्स की सफलता है। कभी कभी गीत में छिपी हुई राग की छाया और धुन के साथ नाचने वाला जल्दी भावावेश में उतर जाता है। फिर भी मैं इतना जरूर कहूँगी कि अच्छे शब्दों के साथ भी नए पीढ़ी में धूम मचा दे ऐसी बीट्स बन सकती हैं।

करीब तीस साल पहले जब मैं अफ्रीका जा रही थी तब मुंबई के एरपोर्ट पर मुझे सुनिलदत्त जी मिल गए। उनके साथ मेरी कुछ बातें हुईं। वे भी संत प्रेमी थे। कुछ विचारों का आदान प्रदान हुआ। मैंने उनसे पूछा कि पुरानी फिल्मों में और आज की फिल्मों में प्रेरणा और आदर्श का जमीन आसमान का फर्क क्यों है? तब उन्होंने कहा कि हमारे ज़माने में समाज को एक श्रेष्ठ मेसेज देने के इरादे से फिल्म बनती थी। आज के ज़माने में पैसे बनाने के हेतु से फिल्म बनाई जाती है और उस हिसाब से ही आइटम डान्स-सॉन्ग्स बनते हैं।

मैं कहती हूँ कि जब कला का उद्देश्य बदल जाता है तब सबकुछ बदल जाता है। आज की फिल्में ज्यादा वास्तववादी हैं। मधुर भंडारकर, पियूष मिश्रा, विशाल भारद्वाज और महेश भट्ट जैसे लोगों ने काफी वास्तववादी फिल्में दी हैं। परंतु जिस वास्तविकता को हरकोई जानता है उसपर फिल्म बनने से कुछ हटकर करने का यश मिल सकता है परंतु समाज को कोई विशेष संदेश नहीं मिल सकता।

टी.वी. चैनल्स, अखबार, फिल्में सब नकारात्मक वास्तविकताओं के पीछे पड़े हैं। मैं उन्हें पूछती हूँ कि आज के समाज के पास कुछ हकारात्मक है ही नहीं? वस्त्र के नीचे की नग्नता पूरी मनुष्यता के लिए वास्तविकता है परंतु उस वास्तविकता को परदे पर बड़ा करके रख देने से समाज को कोई खास प्रेरणा नहीं मिल सकती।

'लगान', 'चक दे इंडिया', 'तारे जमीं पर', 'स्वदेश', 'रंग दे बसंती' और चेतन भगत की लिखी स्टोरी पर 'श्री इंडियट्स' के कुछ डायरेक्टरों ने सिद्ध कर दिया है कि नंगेपन के सिवाय भी वास्तविकताएं हैं इस समाज में। ऐसी कहानियों के ताने बाने बुनकर युवा मानस को अच्छी प्रेरणा दी जा सकती है। लोगों को अच्छे गीत देकर नचाया जा सकता है।

मेरी बातों को सुनकर या पढ़कर संभव है कि कोई धार्मिक रूढ़िवादी या सांप्रदायिक संकीर्णता से भरे हुए मानस के लोग टिप्पणी करें कि आपका इन बातों से क्या लेना देना? आप सीधी सीधी ध्यान की बात करो ना! परंतु ना, नहीं हो सकती सीधी सीधी ध्यान की बात। ध्यान के लिए पहले लोगों में होश जगाना पड़ेगा। और वह जाग्रति लाने के लिए अच्छा साहित्य, अच्छा संगीत, अच्छी फिल्में, अच्छा माहौल, अच्छे अखबार बहुत मदद कर सकते हैं।

क्या पता मेरी बात सुनकर कौन कहाँ जाग जाए? कोई एक्टर! कोई एक्ट्रेस! कोई डायरेक्टर! कोई कम्पोज़र! कोई डान्सर! कोई कवि! कोई पत्रकार! जो अच्छी रचनाएँ, अच्छी बातें, उत्तम कला एवं प्रेरणा दे सकते हैं समाज को।

मैं जो कुछ भी कह रही हूँ सब जानबूझ कर कह रही हूँ। मोहनदास करमचंद गांधी की आत्मकथा पढ़ना। बचपन में उसने एक फिल्म देखी थी, राजा हरीशचंद्र। वहाँ से उसे सत्य की प्रेरणा मिली और सत्य का आग्रह रखते रखते वे महात्मा गांधी बन गए। इससे एक बात तो सीधी और स्पष्ट है कि गांधी से लेकर आज तक के बच्चों में फिल्मों का आकर्षण बराबर रहा है। फिल्मों ने जब जैसा दिया है वैसा बच्चों ने ग्रहण कर लिया है।

फिल्मों के जरिए आपके बच्चों को क्या मिल रहा है, उस हिसाब से उसके मनोसंस्कार विकसित होते हैं। करीब चार से आठ घंटे तक आपके बच्चे के मानस पर टी.वी. हावी रहता है। आप कुछ भी कर लो परंतु मौका मिलते ही वह अपने कुतुहल का शमन कर लेता है।

मुझे सुनकर परंपरागत धार्मिक मानस मेरी बात को पचा पाए या न पचा पाए। परंतु ये सब मुझे कहना पड़ेगा। कोई भी चिंतक परिस्थितियों से पलायन नहीं कर सकता, कोई भी संत अगर समाज के तंत्र को बदलना चाहता है तो उससे भागकर नहीं बदन सकता। भारत तो कला का भंडार है, लिखना, बोलना, नाचना, गाना, खेल-कूद सब एक कला है, ध्यान भी एक कला है। प्रत्येक कला भारत के ऋषि मुनियों ने दी है। आधुनिक फिल्म भरत मुनि के नाट्य शास्त्र का आधुनिकीकरण है। अगर भरत मुनि का विरोध नहीं तो मेरा क्यों? क्या अधिकार है किसी को किसीका विरोध करने का? विरोध के स्वरों में भारत का विकास कभी नहीं हो पाएगा। समझदार लोगों की बोलियाँ भले अलग हों परंतु भाषा का स्वर एक होना अनिवार्य है। परंतु कुछ लोगों का स्वभाव ही होता है विरोध करना, विवाद खड़ा करना। वे संवाद में से भी विवाद ढूँढ

निकालने में माहिर होते हैं। सही बात को भी विकृत करने में उनकी मास्टरी होती है। वे विरोध के सिवाय कुछ भी करने में सक्षम नहीं होते हैं। विरोध के स्वरों से ही उनकी रोटी सिकती है। उनका मन खुश रहता है। परंतु इस पृथ्वी पर जागा हुआ मनुष्य हमेशा दूसरे को जगाता आया है। बुद्ध महावीर, ईसू, और सोक्रेटिस ने विरोध की चिंता कभी नहीं की थी।

कभी कुछ लोग मुझे कहते हैं कि आपका क्षेत्र धार्मिक क्षेत्र है तो धर्म की बातें करो, शास्त्र की बातें करो। इन सब बातों से आपका क्या लेना देना? दोस्तो! इन बातों से सिर्फ मेरा नहीं परंतु पूरे समाज का लेना देना है। जो जो बातें मनुष्य जीवन की नींव में जुड़ी हैं वह सब धर्म है। जो मनुष्य जीवन को खत्म करती हैं वे सब अधर्म। मैंने जीवन का अर्थ यहाँ विशाल संदर्भ में लिया है। बाल मानस को बचपन से जैसा दिया जाएगा उसके अनुसार एक युवमानस आकार लेगा। उसके मन पर जिसका मारा चलेगा वह वैसा ही बनता जाएगा।

छोटे छोटे बच्चों की परेशानियों से छूटने से बच्चों के हाथ में टी.वी. का रिमोट थमा देने वाली माताओं से मैं कहती हूँ कि आपके बच्चे का मन तरो ताजा, स्पष्ट और कोरे कागज जैसा होता है। उसपर जैसे अक्षर लिखने का अवसर देंगे ऐसे ही अक्षर लिख जाएंगे।

कोई मेरे साथ या मेरे विपक्ष में खड़ा रह जाए ये बात अलग है परंतु एक कटु सत्य कहने से मैं स्वयं को नहीं रोक सकती हूँ। कि अगर टी.वी. चैनल्स और फिल्म इंडस्ट्रीस वाले थोड़े सजग हो जाएं भावी पीढ़ी के मनोविकास के संदर्भ में, तो संतों की तरह अच्छा काम कर सकते हैं। एक सच्चा कलाकार घूमते फिरते पृथ्वी के देव के समान है। उनके पास 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' ये भारतीय फिलोसोफी है। वहाँ सौन्दर्य तो है काफी हद तक सत्य भी है परंतु उसमें शिवम् का योग होना अनिवार्य है। अगर ऐसा हो गया तो फिल्मों और सिरयलों के द्वारा एक अपूर्व विचार क्रांति घट सकती है। मैं कहूँगी कि 'मिकि माऊस' से तो 'गणेश', और 'जय हनुमान' जैसे सीरीयल बहुत अच्छी प्रेरणा दे सकते हैं।

प्यारे साधको!

बात तो नृत्य ध्यान की चल रही है परंतु केन्द्र के साथ जैसे परिधि अनिवार्य रूप से छुड़ी हुई होती है ऐसे ही नृत्य ध्यान की परिधि पर खड़ी हुई कुछ बातें बहुत समय से प्रतीक्षा कर रहीं थीं। वर्तमान परिस्थितियों से एक सजग चिंतक के रूप में उन बातों की चर्चा करनी जरूरी थी। यह तो युगपुरुषों का और युगशक्तियों का परम धर्म है। यह सजगता ही धर्म के बीजों को सुरक्षित रखती हैं।

खैर! अब आप समझ गए होंगे कि नृत्य कैसा होना चाहिए और नृत्य ध्यान क्या है? अंग प्रदर्शन और लटके झटके को नृत्य नहीं कह सकते। नृत्य में जब कोई नर्तक तदाकार हो जाता है तब प्रक्षक भी अपने आस पास की दुनियाँ को भूलकर निर्विचार अवस्था में उतर जाता है। वह एक अद्भुत रस में डूब जाता है। ऐसा नृत्य ही नृत्यध्यान की गरिमा प्राप्त कर सकता है।

जो नृत्य मनुष्य की विषय वासनाओं को भड़काता है ऐसा नृत्य आकर्षण बन सकता है, मनोरंजन बन सकता है, पैसे कमाने का साधन बन सकता है, अंग प्रदर्शन या शारीरिक कसरत बन सकता है परंतु ध्यान कभी नहीं बन सकता।

प्रिय साधको!

अब आइए ध्यान विधि की ओर। किसी भी सुंदर स्वर और ताल युक्त सी.डी. या कैसेट के संगीत पर अथवा हाथ में किरताल या मंजीरे उठाकर धीरे धीरे नृत्य का आरंभ करो अगर आवश्यकता लगे तो पहले शरीर और मन को तैयार करो नृत्य में जुड़ने के लिए। अनावश्यक संकोच को झाड़ दो, लज्जा और संकोच में बहुत फर्क है। आप मीरा जैसी लज्जाशील नारी की मूर्ति कहीं भी नहीं देख पाएंगे, फिर भी नाचते नाचते ध्यान में डूबने में उसे कोई संकोच नहीं है।

आपके घर में अगर संभव है तो एकाध कमरे को ध्यान-खंड बना देना। जहाँ आप हल्के से प्रकाश में मस्ती से नाच सकें। कम से कम चौबीस मिनट, ज्यादा से ज्यादा क्षमता और समय के अनुसार।

अगर ध्यान शिबिर में आए हो और साधक साधिकाएं सब साथ हैं तो भी आप अपना एक विशेष वर्तुल बनाए रखकर समूह में भी नाच सकते हैं। नर नारी के भाव से ऊपर उठ जाओ। कौन कैसा नाचता है उसे देखने में मत पड़ो। अपने नृत्य से किसीको प्रभावित करने का प्रयास गलती से भी न हो जाए इसलिए सजग रहो।

ऐसा नाचो कि आपको देखकर दूसरों को भी नृत्य ध्यान में उतरने की सहज प्रेरणा मिल जाए। आपको देखकर दूसरा आपने भीतर स्थिर होने के लिए सजग हो जाए। आप बोध जगाए रखो कि आप एक चेतना मात्र हैं। इतना ही फर्क है एक क्लब के नाच में और ध्यान शिबिर के ध्यान में।

अगर किसी साधक साधिका का सुन्दर नृत्य मन को मोह भी रहा है तो उसका दर्शन करना सीखो। दर्शन हमेशा पावन भावों से पूर्ण होता है। किसी को घूर घूर कर मत देखो। भीड़ में भी अपना एकांत बनाए रखो। नाचते नाचते किसी से टकरा जाने का भय है तो आंखें ज़मीन की ओर खुली रखो।

नृत्य के साथ अगर संगीत है तो संगीत के शब्द ऐसे होने चाहिए कि जो आपको निर्विचार बनाने में या उत्तम भावों से पूर्ण बनाने में आपकी मदद करें। उसके उपरांत संगीत के स्वर आपकी गति को बढ़ाने में मदद रूप होने चाहिए। गीत के लय और भाव आपको नृत्य ध्यान में विकसित होने के लिए सहयोग करने चाहिए।

नृत्य में यथा संभव हाथों की मुद्रा आसमान की ओर बनती रहे इसका खयाल रखिए। आपका मन मस्ती में डूब जाना चाहिए। मस्ती में डूबते डूबते नृत्य में खो जाओ। मन अदृश्य हो जाना चाहिए।

मन के अदृश्य होने के साथ ही स्वयं शिव और कृष्ण आपके रोम रोम में नाचने लगेंगे। वह अवस्था नृत्य नहीं परंतु नृत्य समाधि बन जाएगी। ऐसा नृत्य दर्शनीय बन जाएगा। आपको देखने वाला भी खोने लगेगा अपने अंतर में, आनंद की लहरों में।

वही क्षण उपलब्धी की है। वही क्षण है मुक्ति की, जिसमें आप आप नहीं रहते हो परंतु आपकी हस्ती में परमात्मा उतर आते हैं। जिसका मात्र अनुभव लिया जा सकता है। और वह अनुभव केवल नृत्यध्यान में डूबकर ही हो सकता है। शब्द जगत से तो वह बहुत ऊपर है।

धरणा - ६७

आरती ध्यान

प्रिय साधको!

आठ प्रहर का एक दिन होता है। तीन घंटे का एक प्रहर। दिन और रात मिलकर एक दिवस बनता है। भारत के मंदिरों में २४ घंटों के दिवस में से कम से कम धार्मिक विधियों के लिए १२ से १८ घंटे निकाले जाते हैं। वह एक परंपरा का भाग है। वहां सेवा पूजा आरतियाँ होती रहती हैं। जिस मनुष्य के पास सिर्फ समय ही समय है ऐसे लोगों को एक अच्छे मार्ग पर व्यस्त रखने का यह एक शुभ प्रयास है।

वैसे तो धर्म के प्रत्येक विधि विधान के पीछे मनोविज्ञान और विज्ञान छिपा है। परंतु उस विज्ञान को न जानने वाले लोगों के लिए अथवा लोगों को इस विज्ञान के बारे में ज्ञान देने में असमर्थ पंडित पुजारी और गादीपतियों के लिए धर्म एक रूढ़िगत परंपरा बन जाता है।

ऐसी स्थिति में वहाँ कर्मकांड तो रहते हैं परंतु सुवास अदृश्य हो जाती है। दिव्य भावनाओं की जगह केवल नित्यक्रम अथवा कर्तव्य भाव रह जाता है। कभी कभी पूजा पाठ न करने वालों के मन में अपराध भाव जगता है। उस अपराधभाव से मुक्त होने के लिए मनुष्य धर्म कार्यों के भार में स्वयं को घिसटता रहता है। कुछ धार्मिक क्रिया कलाप ऐसे हैं कि जिससे बौद्धिक चित्त को बहुत सारे प्रश्न उठ सकते हैं परंतु उसका समाधान कहीं से नहीं मिल रहा है। ऐसी स्थिति में केवल अपराध भाव के कारण ऐसे लोग चाहने पर भी पूजा पाठ को नहीं छोड़ सकते। परंतु उसकी पूजा में कोई सुवास नहीं होती, केवल क्रिया होती है।

हमारे यहाँ आस्तिक और नास्तिक शब्दों को लेकर बहुत गड़बड़ हो गई है। आस्तिकता और नास्तिकता को सही अर्थ में लोग समझ नहीं सकते हैं। केवल पूजा पाठ और कर्मकांड करने वाला ही आस्तिक है ऐसा समझना एक गलतफ़हमी है। और मंदिर मस्जिद में ना जाने वाले को नास्तिक कहना यह भी नासमझी है।

खैर! मैं कहती हूँ कि धर्म असंख्य स्वरूपों में सर्वव्यापी फिर भी सूक्ष्म है। धार्मिकता मनुष्य के अंतर्जगत में प्रगट होने वाली एक हकारात्मक भावों की सुवास है। ऐसा भावमयी जीवन, जीवन को जागरूकता, प्रेम और क्षमा प्रदान करता रहता है।

धर्म कभी भी मनुष्य को अपराध भाव से या दोष दृष्टि से नहीं भरता। धर्म कभी मनोभार नहीं बन सकता। मैं कहती हूँ कि कोई भी मनुष्य क्षण भर भी धर्म से दूर नहीं जा सकता। उससे दूर जाने का कोई उपाय नहीं है। आप उसका विस्मरण भी कर दोगे तो भी वह आपसे दूर नहीं जाएगा। क्योंकि धर्म तो आप सहित समग्र सृष्टि को धारण करने वाली एक अदृष्ट शक्ति है। उससे दूर कैसे जा पाओगे? धर्म जब मनुष्य से दूर जाएगा तब मनुष्य का अस्तित्व खत्म हो जाएगा।

आप जिसे धर्म कहते हो वह धार्मिक क्रिया कलाप है। उन क्रिया कलापों के द्वारा आप उस परम सत्य को परम धर्म को सिर्फ धन्यवाद दे सकते हैं जो पूरी सृष्टि को संभालकर बैठा है। पूरे ब्रह्मांड को धारण करके बैठा है। आप उसके प्रति आभार प्रगट कर सकते हो, उसकी प्रार्थना कर सकते हो। अपने भावों को व्यक्त कर सकते हो। ऐसा सबकुछ करके आप अपना ही आत्मबल और शांति बढ़ाते हो, इससे ज्यादा कुछ भी नहीं।

परंतु सामान्य मनुष्य के लिए ज्ञान दृष्टि के अभाव में मंदिर मस्जिद, पूजा-पाठ, प्रार्थना-आरती और कंठी माला ये सब जीवन का आधार बन जाता है। ये सब हकारात्मक यात्रा के प्रारंभिक पड़ाव हैं। कुछ लोग यात्रा में आगे बढ़ सकते हैं तो कुछ लोग पड़ाव को कायमी मुकाम बना देते हैं। वे वहाँ रुक जाते हैं। अटक जाते हैं।

मैं कहती हूँ कि रुके हुए लोग ज्यादा हैं, पहुंचे हुए कम। फिर भी हमारे संतों एवं ऋषियों ने प्रत्येक पड़ाव को स्वीकृति दी है। धर्म का एक अर्थ है सत्य। सत्य की ओर कदम उठाने के विचार को भी शास्त्र ने पुण्य कहा है। क्यों ?

ये मनुष्य को ऊपर उठाने का एक मनोवैज्ञानिक और उदार अभिगम है। यह स्कूल में सभी बच्चों को मिलता हुआ एक प्रोत्साहन इनाम जैसा है। जिससे बच्चों को और विकसित होने की प्रेरणा मिलती है।

मंदिर, मस्जिद, पूजा-पाठ सब अच्छाई की ओर तथा सत्य की दिशा में उठाया हुआ पहला कदम है। सत्य की दिशा में अच्छाईयां। सेवा, सदुण, सत्कर्म ये सब पड़ाव पहले आते हैं। प्रत्येक धर्म और संस्कृतियों में इस शुभारंभ का स्वीकार किया गया है। मनुष्य को हतोत्साहित नहीं करना है। उत्तम लक्ष्य के लिए वह आगे बढ़ता रहे इसलिए उसका हौसला बढ़ाना है।

मैं कहती हूँ कि यह प्रथम कदम अंतिम लक्ष्य तक पहुंचे इसलिए ध्यान का पाथेय अनिवार्य है। ध्यान आपकी आंतरिक शक्ति बढ़ाएगा। वह आपकी चेतना को स्वस्थ खुराक देता रहेगा। अगर ध्यान का पाथेय नहीं है तो यात्री थक जाएगा। कमजोरी का अनुभव करेगा।

आज मैं देख रही हूँ कि प्रथम पड़ाव पर बहुत सारी चेताएं रुक गई हैं। और अंतिम पड़ाव पर कोई विरला ही पहुंच सकता है। पर मैं चाहती हूँ कि असंख्य चेतनाएं अंतिम पड़ाव तक पहुंचें, प्रथम पड़ाव को धन्यवाद देकर यात्रा को आगे बढ़ाएं और ध्यान के पाथेय से नूतन ऊर्जा का अनुभव करता रहे।

ऐसा तब होगा जब पूरी मनुष्यता ध्यान में उत्सुक हो, ध्यान से अवगत हो और ध्यान में प्रवृत्त हो। भारत में ऐसा स्वर्ण युग देखा है कि जहाँ समाज में केवल ऋषि और ऋषि पत्नियाँ ही होती थीं। उनकी सन्तान भी बालऋषि ही होती थी। ज्यादातर लोग ज्ञानी और ध्यानी थे। भारत के इस स्वर्ण युग के इतिहास को जानने के लिए भी कम से कम प्रत्येक पढ़े लिखे मनुष्य को एक बार वेद पुराण और शास्त्रों को पढ़ना चाहिए।

जिसकी संतान को मनुष्य कहा गया, ऐसे विश्व का प्रथम मानव मनु के पुत्र प्रियव्रत ही अंतर्मुखी और ज्ञानी नहीं थे परंतु उनकी कन्या देवहूति भी अध्यात्म की एक उच्चतम भूमिका में जी रही थी। और इसी वजह से उसने अपने लिए अन्य किसी योनि के राजकुमार को पसंद न करके ऋषि कर्दम को अपने पति के रूप में पसंद किया। एक आध्यात्मिक नारी का संसार भी आध्यात्मिक पुरुष के साथ सच्चे सन्यास को जन्म देता है। देवहूति ही नौ कन्याएं थीं सब उत्तम और विदुषी थीं। देवहूति के सांख्यशास्त्र प्रवर्तक पुत्र कपिल को तो समाज ने भगवान मानकर स्वीकार किया। देवहूति की नौ कन्याओं में से यहाँ आपको केवल एक कन्या का स्मरण दिलाऊंगी और वह थी सती अनसूया। ऋषि अत्री से विवाह के बाद अनसूया के तीन पुत्र हुए, वे थे भगवान दत्तात्रेय, ऋषि दुर्वासा, और सौन्दर्य सम्राट चंद्र। तीनों समर्थ एवं ज्ञानी थे।

ऐसी तो अनेक सत्य घटनाओं से हमारा इतिहास भरा हुआ है। इसीलिए कहती हूँ कि भारत ने ऐसा स्वर्ण युग देखा है कि जब पूरी मनुष्यता ऋषि कक्षा की थी। क्यों ? क्योंकि तब जीवन का उद्देश्य भोग नहीं था, ज्ञान था। उस वक्त जरूरतों की परिपूर्ति होती थी और इच्छाएं संयमित थीं। तब भोग क्षणिक बन जाता था और ध्यान का जीवन में शाश्वत स्थान था। जिसके कारण ज्ञान सर्वस्व था।

भोग जब सहज होता है, भोग वृत्ति मनुष्य पर कब्जा नहीं कर सकती।

आपने अनेक बार पढ़ा होगा अथवा कहीं न कहीं सुना होगा कि ऋषि ध्यान में बैठे थे। पुराण की काफी कहानियाँ ध्यानस्थ ऋषि से शुरू होती हैं। क्यों ? क्योंकि ध्यान उनके जीवन का अनिवार्य अंग था। ऐसा भी पढ़ा होगा कि ध्यानस्थ ऋषि हजार, दो हजार, पांच हजार, दस हजार वर्ष के बाद ध्यान में से जागे। यह कोई मन गढ़त कहानियाँ या काल्पनिक बातें नहीं हैं। यह तो भारत का परम सत्य है।

एक जमाने में भोग परिधि में था और ध्यान केन्द्र में। आज भोग केन्द्र में है और ध्यान परिधि में चला गया है। परिधि से भी दूर जा रहा है। आज का मनुष्य भोग को शाश्वत बनाना चाहता है। ध्यान क्षणिक बन रहा है। परंतु मैं कहूँगी कि जो क्षर है वह अक्षर कैसे बन पाएगा ? जिसकी नियती ही नष्ट होना है वह अविनाशी कैसे बन पाएगा ? भोग और भोगी दोनों नाशवंत हैं। मनुष्य जब व्यर्थ के पीछे भागना बंद करके अ-क्षर की आराधना शुरू करेगा तब वह अ-क्षर उसके लिए शाश्वत सुख बन पाएगा। और वह अविनाशी पद को प्राप्त करेगा। और ऐसी अवस्था को सिर्फ ध्यानस्थ मनुष्य ही प्राप्त कर सकता है।

ध्यानस्थ का अर्थ आंख बंद करके बैठा हुआ ऐसा गलती से भी मत करना। ध्यानस्थ का अर्थ है जागा हुआ मनुष्य।

शाश्वत सुख का अर्थ मैं इतना ही करूँगी कि नाशवंत की चाह खत्म हो जाए।

ऐसे शाश्वत सुख के विश्व में मनुष्य का प्रवेश कराने के लिए अकसर सभी धर्मों ने किसी न किसी ध्यान विधि का अपने में समावेश कर दिया है। एक अर्थ में कह सकते हैं कि विश्व में जितने धर्म हैं उतनी ध्यान विधियाँ हैं। और एक दूसरे से काफी मिलती जुलती हैं।

हिन्दु धर्म में ऐसी ही एक विधि है, आरतीध्यान। वह आरती घर में और मंदिरों में दोनों जगह होती रहती है। परंतु मंदिर की आरती एक विशिष्ट प्रभाव छोड़ जाती है मनुष्य के मन पर। और वह है घंटाख और नाद का प्रभाव, जो मनुष्य का ध्यान में प्रवेश करा देता है।

समय के साथ, आरती के साथ गुणगाणात्मक, और समर्पणात्मक भावपूर्ण गीत जुड़ते गए। अपने अपने इष्ट देव के लिए संत कवियों ने आरती के गीत बना लिए और आज आरती के साथ गाए भी जाते हैं। परंतु वास्तव में आरती ध्यान केवल नाद जगत में साधक की चेतना का प्रवेश है।

छोटे छोटे गाँव में आज भी कुछ लोग दौड़कर आरती के वक्त पहुंच जाते हैं मंदिरों में। आरती की इतनी विशेष महिमा क्यों है? मनुष्य ने इस महिमा को जाना भी है फिर भी नहीं जाना। भारतीय परम्परा की आरती और मुस्लिम परंपरा की आजाज मनुष्य को सीधा ध्यान में ले जाती है।

आरती का वक्त एक विशेष समय माना जाता है। वेद की त्रिकाल संध्या का विधान और त्रिकाल आरती दोनों का गहरा संबंध है। दिन में प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीन काल संक्रांति काल हैं। इनके दौरान मनुष्य के भीतर और बाहर हकारात्मक और नकारात्मक ऊर्जा के बीच कुछ क्षणों का विशेष संघर्ष घटित होता है, ऐसे समय में ध्यान मनुष्य के चित्त को शांति और स्थिरता देकर नकारात्मक ऊर्जा से सुरक्षित रहने का बल प्रदान करता है। इसे रहस्यमयी सृष्टि का आंतरविज्ञान कह सकते हैं। कभी कभी सत्य को प्रगट करने में शब्द छोटे पड़ जाते हैं।

आरती का समय लोगों के लिए विशेष आस्था और श्रद्धा का समय है। उसका दूसरा भी एक कारण है, पहले के जमाने में बिजली की कोई व्यवस्था नहीं थी। और मंदिर के गर्भगृह में खिड़कियों की व्यवस्था भी नहीं होती थी। आज भी ज्यादातर मंदिरों में ऐसी किसी व्यवस्था को नहीं देखा है। जिसके कारण जहाँ भगवान की मूर्तियाँ स्थापित की गई हैं उस स्थान पर ज्यादा प्रकाश नहीं पहुंचता था। उस वक्त भगवान के मंदिरों में दर्शन के लिए दिए जलाए जाते थे।

आरती के वक्त प्रभु की मूर्ति के मुखारबिंद से लेकर चरण तक के पूर्ण दर्शन हो सकते हैं। पुजारी के हाथ की आरती जब मूर्ति के आसपास घूमती है तब विशेष रूप से भगवान की स्पष्ट झांकी प्राप्त हो सकती है। आरती उतारने के कुछ खास नियम भी होते हैं। आज तो वे नियम विस्मृत होते जा रहे हैं पुजारियों के द्वारा। छोड़ो। मुझे आपको कोई कर्मकांड नहीं सिखाना है परंतु आरती के वक्त घूमते हुए दियों की ज्योति के प्रकाश की वजह से प्रभु के सारे सिंगार और स्वरूप के दर्शन होते थे तब सगुण उपासक, भक्त अपने प्रभु का सुंदर या अब्दुत सिंगार का दर्शन करके भावसमाधि में खो जाते थे। कौन चाहता है अपने प्रिय को असुंदर देखना! वे भक्त चौबीस घंटे के लिए उस झांकी की छबि को नैनो में बसाकर बार बार उसका स्मरण करके मस्त रहते थे, प्रसन्न रहते थे। उनके चित्त को इष्ट के स्वरूप में स्थिर रहने का एक आधार मिल जाता था। दूसरे दिन फिर सिंगार बदल जाते हैं। रोज कुछ न कुछ विशेषताएं रहती हैं, और आरती के दिये की ज्योति के द्वारा झांकी स्पष्ट होती थी। और भक्त की भावावस्था भी बनी रहती थी।

समय के साथ बड़े बड़े मंदिरों में फिर तो ये सब बातें एक स्पर्धा या फैशन बन गई और लोगों के लिए केवल बाहरी आकर्षण का केन्द्र। आज के मंदिरों की चमक दमक में धन पैठ गया और ध्यान खो गया। भगवान के विविध सिंगारों पर सिर्फ टिप्पणी रह गई। तन्मयता खो गई। ये एक दुर्भाग्य की बात है।

आरती के वक्त मंदिरों में विशेष उपस्थित रहने का एक तीसरा कारण जो बहुत सूक्ष्म, आध्यात्मिक और कुछ हद तक मनोवैज्ञानिक भी है। ध्यान का मन के साथ गहरा संबंध है। ध्यान की प्रत्येक विधि में मनोवैज्ञानिक स्पर्श तो होता ही है। क्योंकि उसमें सीधा मन के साथ ही काम लेना है। मन को ध्यान में स्थिर करके मन के पार पहुंच जाना है।

प्यारे साधको!

आरती के वक्त घंटार, नगारे आदि वाद्यों की नाद ध्वनि से दर्शन करने वाला साकार का दर्शन करते करते निराकार में पहुंच जाता है। धर्म का परम उद्देश्य यही है।

मैंने अनेक मंदिरों में जाकर असंख्य दर्शनार्थियों का आरती के वक्त खास अभ्यास और दर्शन किया है। क्योंकि आरती को मैं एक ध्यान विधि में समावेश करना चाहती थी। मेरी अनुभूति व्यक्तिगत है कि समष्टिगत, यह भी जानना चाहती थी। इसलिए मुझे हजारों हजारों लोगों का अभ्यास करना पड़ा। कुछ समय तक मैंने मंदिर में रेग्युलर जाना शुरू किया। मैंने स्वयं ने तल्लीनता से कई दिनों तक भगवान की आरती उतारना शुरू किया और साथ साथ आरती के बाद लोगों की मानसिक अवस्था का दर्शन भी किया। और मेरे ध्यान में आया कि प्रारंभ में लोग आरती के दिए, पुजारी, मूर्ति, शंख, सिंगार सबको देखते रहते हैं। परंतु कुछ क्षणों के बाद उनकी आंखें बंद हो जाती हैं। वे कहीं खो जाते हैं। उन्हें बोध तक नहीं रहता है कि उनके पास कौन खड़ा है! एक अर्थ में वे ध्यानस्थ होते हैं। उस ध्यानस्थता की वजह से भीड़ में नर नारी के भेद से भी लोग मुक्त हो जाते हैं।

वहाँ उन्हें कोई कहने वाला नहीं होता है कि आंखें बंद रखो, कोई प्रवृत्ति न करो, स्थिर रहो, हाथ जोड़कर रखो। फिर भी सैकड़ों लोगों

में सबकुछ सहज घट जाता है। अति चंचल मनुष्य को भी मैंने आरती में स्थिर हो जाते हुए देखा है।

भेड़ियाधसान के कारण जिन्हें मंदिरों में जाना अच्छा नहीं लगता है वैसे लोग भी आरती में मंदिर के एक कौने में खड़े रहकर आंख मूंदकर के दस पंद्रह मिनट के लिए किसी अज्ञात विश्व में खो जाते हैं। निर्विचार हो जाते हैं। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि ताल, रिथम, रव, ध्वनियाँ और वाद्ययंत्रों की लयात्मकता आपको ध्यान समाधि में पहुंचा देती है।

वह ध्वनि आपके चारों ओर इस तरह से गूंजती है कि आपके ऊपर बाहरी ध्वनियों का आक्रमण नहीं हो सकता। मंदिर के गुंबज के (गोल घुम्पट) की वजह से आरती की ध्वनि आपके इर्द गिर्द एक विशिष्ट संगीत वर्तुल पैदा करती है। वह नाद आरती के दौरान आपकी धड़कनों के साथ समाविष्ट होता रहता है। जिससे बिना किसी विशेष प्रयास के या विधि के आप तुरंत ध्यानमय बन सकते हो।

आरती के पीछे एक वैज्ञानिक कारण भी छिपा है। आरती की ध्वनियों से वातावरण के सूक्ष्म कीटाणु समाप्त हो जाते हैं और धूप दीप से वातावरण विशेष विशुद्ध और सुवासित बनता है। जिससे आरती के समय मनुष्य के तन मन को प्रसन्नता की प्राप्ति होती है।

अफसोस की बात है कि आज के ज्यादातर मंदिरों में नौकरी हो रही है, आरती नहीं। एक ज़माने में, और कहीं कहीं आज भी वैष्णव संप्रदायों की विशेष शाखाओं में दिन में आठ बार आरती होती है। और वह एक विधान के साथ होती है। पहले के ज़माने में मंदिर के गर्भगृहों में पुजारी नहीं भक्त रहते थे और तब उस भक्त का भाव भी रंग लाता था भगवान की आरती में। नगाड़े, घंट और झालर डंके के बजाने वाले भी कुछ खास लोग रहते थे। वे ताल और लय के जानकार होते थे। वे लोग समय समय पर आरती की ध्वनियों को छेड़ने के लिए भक्तिभाव से उत्सुक रहते थे। वे लोग अपनी सारी ऊर्जा उंडेल देते थे आरती के वाद्यों को बजाने में। और ऐसा होने में अपना सौभाग्य समझते थे।

आज ध्यान की समझ के अभाव में और भावनाशील भक्तों के अभाव में मंदिर के नगरों पर धूल जमी हुई होती है। मंदिर सूने पड़े हैं। डंका और झालर पर कोई चमक नहीं है। परंतु एक बात अच्छी हुई है कि तकनीकी विकास के कारण उन सबका स्थान इलेक्ट्रिक आरती सिस्टम ने ले लिया है। जिससे भारत के कई मंदिरों में आरती नाद गूंजता रहा है। परंतु अफसोस वह गूंज मनुष्य के भावों से धबकती नहीं है, मशीनों के बल से उठी हुई है।

किसी किसी परंपरा में विविध आरतियाँ और समय समय के भजन और उसकी गूंज आज भी सुनाई देती है परंतु धन से सक्षम एवं साम्प्रदायिक मंदिरों को छोड़कर, ज्यादातर मंदिरों की आरतियाँ मशीनों से गूंज रही हैं। भक्तों से या ध्यान एवं संगीत प्रेमी आरतीवादकों से नहीं। लोग आरतीध्यान से दूर जा रहे हैं।

खैर! कहने का तात्पर्य इतना ही है कि धार्मिक स्थानों से जुड़ा हुआ आरती विधान मनुष्य को आरती की ध्वनि के द्वारा ध्यान में ले जाने के लिए ही है। वह ध्वनि अत्यंत पावन और आकर्षक है।

अगर आप एक ध्यान प्रेमी और धर्म स्थान प्रेमी व्यक्ति हैं, आपको आरती की ध्वनियाँ पसंद हैं, आपका तन मन आरती में आनंदित हो सकता है तो आप आपके निकट के किसी भी मंदिर में आरती के वक्त पहुँच जाओ।

अगर आरती के वाद्यों को बजा सकते हो तो बजाने लगे। उसकी लय को बनाए रखने में आपका शरीर और मन सजग रहेगा। और वह सजगता मन और शरीर को उस लय के साथ तद्रूप कर देंगी।

मन एक ही क्षण में एक साथ दो विषयों में प्रवेश नहीं कर सकता। जिस कारण वह आरती में एकाग्र हो जाता है। क्योंकि आरती का भारी नाद मन को इधर उधर भागने से रोक देता है। आपका मन दिन में कम से कम दो बार पंद्रह से बीस मिनट जब आरती में एकाग्र होने लगेगा तब दिन भर आपकी जीवन शैली पर वह एकाग्रता, शांति, प्रसन्नता और निर्विकल्पावस्था का असर रहेगा। आपके व्यवहार में उसका प्रभाव दिखेगा। आपके कार्यों में वह ध्यान प्रतिबिंबित होने लगेगा। संध्या आरत के बाद घर जाकर आप सहज ही शांति और मौन की अपेक्षा करेंगे। शांत चित्त से शयन में जाने से गाढ़ निद्रा प्राप्त होगी और स्वप्न कम हो जाएंगे। धीरे धीरे यह आपके लिए एक जीवन क्रम बन जाएगा। फिर आरती का आकर्षण बढ़ने लगेगा और एक ब्रह्मनाद के साथ होती हुई विलीनता आपके ऊपर दिन रात छाई रहेगी।

आरती की ध्वनियाँ प्रतिपल गूंजती रहेंगी आपके भीतर जो रोज-ब-रोज के काम काज में विक्षेप किए बिना आपको ध्यानावस्था की अनुभूति कराती रहेगी। आप एक क्रियाशील व्यक्ति में से कर्मयोगी बन जाएंगे।

मैं एक बार फिर से कहूँगी कि अगर आपका धर्म स्थानों से और आरती के घंटनाद से लगाव है तो आरती को एक धार्मिक औपचारिकता नहीं परंतु आप ध्यान का आधार बना सकते हो। आरती की ध्वनि के द्वारा पहुँच जाओ साकार से निराकार तक।

काव्यरसलीनता ध्यान

प्रिय साधको!

जीवन का आधार है रस। जब तक रस है तब तक जीवन की संभावनाएं हैं। रसहीन जीवन कोई जीवन नहीं है। रसहीन व्यक्ति एक जीवित मृत है।

रस के अनेक अनेक आधार हैं, अनेक अनेक विषय हैं। ध्यान शास्त्र विविध प्रकार के रसों में डूबना सिखाकर मनुष्य को दुःख के पार की अवस्था का दर्शन करा सकता है। जरूरी है आपका उस शास्त्र में (ध्यान में) पूर्ण रूप से उतरना।

मनुष्य का रस हजार हजार विषय में होता है। विषयों में रस लेने की उसकी वृत्ति, इन्द्रियों की शक्ति और शरीर की क्षमता उसे जिंदा रहने में मदद करते हैं। यह एक प्राकृतिक क्रिया है।

इन्द्रियाँ और शरीर जब साथ छोड़ने लगते हैं तब मनुष्य चाहने पर भी विविध विषयों में रस नहीं ले पाता। क्यों ? सीधी बात है, आँखों को देखने में रस है, परंतु देख नहीं पाती। कानों को सुनने में रस है परंतु सुन नहीं पाते। जीभ को स्वाद करना है परंतु पेट हजम नहीं कर पाता।

इस तरह से शरीर तथा इन्द्रियों की असहाय स्थिति की वजह से जीवन में से रस ही उड़ता जाता है। यह निरसता प्रत्येक वृद्ध की अंतिम नियति है। इस निरसता से ही मृत्यु घटित होनी लगती है।

मैं कहती हूँ कि ज्यादा देर हो जाने के पहले ही जीवन के सही रस को समझ लो। उसे रसमय बना लो। आनंदमय बना लो, उत्सवों से भर दो आपके जीवन को। और सजग भी रहो कि वह रस आनंद और उत्सव रुचिकर ढंग से प्राप्त हो। जिससे आपके और अन्य के लिए वे क्षण चिरस्मरणीय बन जाएं।

अजाग्रत और स्वार्थपूर्ण मानस से लिया हुआ आनंद अपराध बन सकता है। उस अपराध का किसी को पता चले या ना चले परंतु वह अस्तित्व में घटित एक गुप्त पाप हो जाता है। ऐसा आनंद कि जो परपीड़न में से आया हो, वह अंत में पीड़ा देने वाला ही होता है।

मनुष्य सम्यक मार्ग से आनंद प्राप्त कर सके इसलिए परमात्मा की सृष्टि में सैंकड़ों माध्यमों का सर्जन हुआ है। जैसे कि नदी, समन्दर, हरे भरे घने पेड़, शीतल हवा, फल फूल, सूरज, चांद, सितारे, खुला आसमान आदि प्राकृतिक तत्वों में रस लेकर आप आनंद को प्राप्त कर सकते हैं।

कुछ खास मनुष्यों ने विश्व को विशेष रूप से आनंद प्रदान करने के लिए और रस सृष्टि को विशेष रसरूप बनाने के लिए कई कलाओं की खोज की है। उन कलाओं में से प्राप्त होने वाला रस ब्रह्म रस से ज़रा भी कम नहीं है।

कला, साहित्य एवं संगीत की खोज तो मनुष्य को विशेष आनंद और शांति प्राप्त हो और वह मानसिक रूप से विशेष स्वस्थता और प्रसन्नता का अनुभव कर सके इसीलिए हुआ है।

वर्तमान युग में मानव मन को विकृतियों से भर देने वाली कला, साहित्य और संगीत का सर्जन केवल पैसे के लिए हो रहा है। इसमें मनुष्यता का कोई कल्याण नज़र नहीं आ रहा है। ऐसे माहौल से समाज को आपकी आत्मजाग्रति और विवेक का नेत्र ही बचा पाएगा। यह विवेक नेत्र आपको ध्यान के द्वारा प्राप्त होगा।

मनुष्य को ध्यान में जब रस आने लगेगा तब सुख भोग के संबंध में उसका निरक्षर विवेक सहज ही जाग जाएगा। और मैं इस विशुद्ध आध्यात्मिक हेतु की परिपूर्ति के लिए ध्यान क्षेत्र में प्रवृत्त रहना चाहती हूँ।

ध्यान शास्त्र असंख्य एवं भिन्न भिन्न कल्याणकारी विधियों में आपको रसलीन बनाकर ब्रह्मरस में सराबोर होने की कला सिखाता है। मेरे अनुभवों के आधार पर जो कुछ खास ध्यान विधियों का आविष्कार हुआ है, उन विधियों में से एक विधि है 'काव्यरसलीनता ध्यान'।

मेरे पैंतीस वर्ष की आध्यात्मिक यात्रा के दौरान मैंने वेदों से लेकर आज तक के तमाम साहित्य का अभ्यास किया है। मैं काव्य के हर स्वरूप में से गुजरी हूँ। अनेक अनेक ग्रंथों का और काव्य के प्रकारों का विभिन्न भाषाओं में आस्वादन किया है।

अनेक काव्य प्रकारों का मैंने सृजन भी किया है और प्रत्येक बार एक अनुभव सामान्य रहा है कि रसमय कविता हमें अपने रस में भिगो देती है। कविता की रसरंगता आपको रंग देती है ब्रह्मरस में। उस वक्त शब्द ब्रह्म का प्रभाव तो होता ही है परंतु कभी कभी शब्द से ज्यादा रस की प्रभावकता बढ़ जाती है। वैसे तो रस शब्द से ही उत्पन्न होता है परंतु रस ज्यादा बलवत्तर होता है।

कभी कभी रस उत्पन्न करने के लिए एक शब्द काफी हो जाता है, तो कभी कभी अनेक शब्दों के उचित चयन से रसनिष्पत्ति होती है। फिर वहाँ शब्द अदृश्य हो जाते हैं और हृदय में रसोद्रेक होने के साथ ही बौद्धिक व्यायाम भी विदा हो जाते हैं।

ऐसी रसोत्पत्ति सुधबुध भुला देती है; कभी आँसु, कभी आहें, कभी प्रगाढ़ शांति, कभी आनंद, कभी अल्पमूर्छा, कभी उन्माद और कभी मौन में ले जाती है। ये सब रसमय होने के प्रमाण हैं। मैं कहती हूँ कि ये सारी अवस्थाएं ध्यान प्रवेश हैं।

काव्य रस के द्वारा आनंद प्राप्ति के साथ साथ आपके मन के भावों का विरेचन भी हो जाता है। साहित्य में प्रमुख नौ रसों का वर्णन है। भरत मुनि ने नाट्य शास्त्र में इन सबका अद्भुत वर्णन किया है।

मैं कहती हूँ कि आधुनिकता के लिए अथवा आधुनिक दिखने के लिए हमारे साहित्य में फ़ोइड या रसेल को बीच में लाने की जरूरत नहीं है।

हाँ, एक भाषा या साहित्य के रूप में विश्व के किसी भी लेखक या चिंतक को पढ़ लो, यह अलग बात है परंतु फ़ोइड, नित्से, रसेल, बर्नाड शो और वर्डज़्वर्थ में ऐसा क्या है, कि जो भारत के पास नहीं है ?

वात्सायन के कामसूत्र से आगे विश्व में क्या हो सकता है ? खजुराहो के स्वच्छंद शिल्पों ने क्या कमी रखी है मनुष्य के शारीरिक रस के अतिरेक की हरकतें शिल्प कला के द्वारा दिखाने में ? भरत मुनि के नाट्य शास्त्र से आगे टी.एस.इलियट और शेक्सपीयर नहीं पहुंच सकते। पेटेलो और अरस्तु केथारसिस के सिद्धांतों को तो करंकिणी और क्रोध मुद्रा की तंत्र शास्त्र में बात करके सदाशिव ने सृष्टि के आरंभ में मनोभावों का विरेचन कर देने के लिए मनुष्य को एक ध्यान विधि दे दी। जदु कृष्णमूर्ति और मनुस्मृति रसेल से बहुत आगे हैं।

म्यूज़िक ऑर्गन (सिन्थेसाइज़र) की पश्चिमी म्यूज़िक कॉर्ड की भाषा से तो भारतीय संगीत की भातखंडे लीपि विशेष वैज्ञानिक और सूक्ष्म है।

कविता के हाईकू और सोनेट प्रकारों से तो वेद व्यास के उपजाति, मंदाक्रांता, इन्द्रव्रजा, उपेन्द्रव्रजा, शिखरणी, हरिगीत आदि छंद बहुत श्रेष्ठ हैं।

डिंगल पिंगल भाषा के देशज साहित्य तो रसनिष्पत्ति में अद्भुत हैं। जिसमें त्रिभंगी, भुजंगी, त्रोटक, पद्धरि, घनाक्षरी, छप्पाखरा, सवैया, रोला, ढोला, माढ, सोरठा, चौपाई, दोहा आदि विविधता केवल भारतीय कवि ही दे सकते हैं।

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल के सूर, तुलसी, कबीर, मीरा, घनानंद, रहीम और रसखान का काव्यरस मनुष्य को रुला देता है। केशव और बिहारी के व्यंजना से भरपूर और श्रृंगार से पूर्ण काव्य क्षणभर के लिए मनुष्य की मति को मूर्छित कर देते हैं।

गणित से लेकर ज्योतिष, खगोल और भूगोल तक भारत सबसे आगे है। शून्य की खोज करने वाले आर्यभट्ट हो या ज्योतिष शास्त्री पराशर या भ्रगु परंतु सबने विविध रसों में, विविध विषयों में भारत को कुछ अद्वितीय देने का प्रयास किया है। डॉ. भाभा, साराभाई, डॉ. अब्दुल कलाम और साम पित्रोड़ा ने विज्ञान एवं टेक्नोलोजी के विकास की भी परिपूर्ति कर दी है।

पश्चिम के विविध क्षेत्रों की महान हस्तियों का मैं आदर करती हूँ परंतु कोई ऐसा समझे कि जो भारत के पास नहीं है वह पश्चिम के पास है तो ऐसा कहने वाला आदमी भारतीय ज्ञान भण्डार से अपरिचित है।

आपने पुराणों में पुष्पक विमान की कथाएं सुनी होंगी। ये कोई कल्पना नहीं है, उड्डियान यंत्र का यश भारतीय साहित्य से अज्ञात लोग भले राईट ब्रदर्स को दें परंतु मैसूर इंटरनेशनल एकेडमी और संस्कृत रिसर्च के डीरेक्टर श्री जी.एस. जोसीयर ने एक प्राचीन हस्तप्रत प्रस्तुत करके महर्षि भरद्वाज प्रणित विमान शास्त्र को भारतीय खोज सिद्ध किया है। महर्षि भरद्वाज ने 'यंत्र सर्वस्व' नाम का वृहद्काय ग्रंथ रचकर एक विराट विमानशास्त्र विश्व को अर्पण किया है। इस विषय के सारे ग्रंथों का हेतु ब्रह्मांड में एकता प्राप्त करने का और आकाशी यात्रा सुविधादायक हो इसलिए हिचकेमुक्त विमान कैसे बनाया जाए इसकी माहिती प्रदान की है। जो यंत्र, पक्षी की तरह अपनी ही शक्ति से ज़मीन, जल और हवा के ऊपर जा सके।

मैं कहती हूँ कि विज्ञान आज का है ही नहीं, वह अति प्राचीन है जो भारत से बाहर जाकर नए नाम से वापस आया है।

शौनक का क्रियासार, ऋषि बोधायन का लोहतंत्र, विमानचंद्रिका, व्योमयान तंत्र, शक्ति तंत्र और धातु सर्वस्व। अत्रि ऋषि का नामार्थ कल्पसूत्र। ईश्वर ऋषि का सौदामिनी कला। लल्ल ऋषि का यंत्र कल्पतरु। व्यास मुनि का ब्रह्मांडसार। भरद्वाज का आकार तंत्र और अंगिरस ऋषि का रूप शक्ति प्रकरण अप्राप्य और अद्भुत ग्रंथ हैं। विश्व की कोई भी टेक्नोलोजी इसके बाहर की नहीं हो सकती।

विविध अध्ययन के हेतु से, खोज कार्य के ईरादे से अथवा साहित्यिक समन्वय की भावना से भले सबकुछ पढ़ो। सब प्रकार के साहित्य का आनंद लो, परंतु भारत के पास नहीं है इसलिए साहित्य कहीं और से उधार लेना पड़ेगा, चिंतन और दर्शन उधार लेना पड़ेगा; ये धारणा और विचार भारतीय साहित्य, संगीत और कला क्षेत्र के लिए तो बिलकुल सुसंगत नहीं है।

भारत के पास एक अपराजित मानस है। उपरांत एक उदार और स्वीकारभावपूर्ण हृदय भी है। इसलिए हमने सबका स्वीकार किया।

अज्ञानी मानस विदेशी बातों से जल्दी प्रभावित हो जाते हैं। फिर वह साहित्य हो या फैशन। यह एक वैश्विक प्रश्न है। अमेरिका

शाकाहार और योग ध्यान के प्रति मुड़ रहा है और अन्न को ब्रह्म कहने वाले भारत के बड़े बड़े शहरों में मांसाहार सहज उपलब्ध होता जा रहा है। देशी-विदेशी शराब की दुकानें, डिस्को थैप, जाज़ म्यूज़िक, बार गर्ल और कॉल गर्ल का आकर्षण बढ़ रहा है।

मानव मन का स्वभाव है कि वह अभाव के प्रति आकर्षित होता रहता है। परंतु मैं उसे एक प्रकार की सामूहिक और आध्यात्मिक अपरिपक्वता कहूँगी।

ध्यान एक सम्यक दृष्टि और मार्ग देता है। विश्व का मनुष्य जब ध्यान के प्रति मुड़ेगा तब अभाव का आकर्षण मिट जाएगा। ध्यान के द्वारा मनुष्य जब अपने भीतर से आनंद पाने की कला सीख लेगा तब ये सामूहिक अपरिपक्वता खत्म हो जाएगी।

रोजाना शोट्स और टीशर्ट पहनने वाली पश्चिम की औरतें नवरात्री दौरान वडोदरा में आकर चणिया-चोली पहनती हैं और एक पूर्ण नारी की वेशभूषा में स्वयं को देखकर खुश होती हैं। दूसरी ओर भारत के रूढ़िवारी परिवारों की घुंघटा निकालने वाली औरतें मौका मिलते ही शोट्स और टीशर्ट्स चढ़ा लेती हैं। यह क्या है? – विपरीत के आकर्षण के सिवाय कुछ भी नहीं। ये केवल बदलते मन की निशानी है। जो मनुष्य को प्रकृतिगत रूप से प्राप्त हुआ है।

अप्राप्य जब प्राप्य बन जाता है तब आकर्षण खत्म हो जाता है।

ऐसा ही अकस्मात काव्य के साथ भी हुआ। कुछ प्रयोगवादी लोगों ने छंदों को तोड़कर और भाषा को मरोड़कर कविता को नए रूप में ढालने का प्रयास किया। परंतु ऐसी कविता मनुष्य के चित्त में ज्यादा समय तक स्थिर नहीं हो सकती। भाव और छंद काव्य को सहज स्मरणीय बना देते हैं।

काव्य का भाव मनुष्य के हृदय को सीधा स्पर्श करता है, छंद के लय से मनुष्य डोलने लगता है। छंद का लय, धुन और छंदगान शैली से भी मनुष्य के हृदय में भावोद्रेक होने लगता है।

मेरा अनुभव है कि काव्य में सम्पूर्ण रसलीन हो जाने से मनुष्य ध्यान को उपलब्ध हो जाता है।

काव्य का केन्द्रवर्ती भाव रस को जन्म देता है। काव्य शास्त्र के अनुसार प्रमुख नौ रस हैं – शांत, वीर, शृंगार, रौद्र, करुण, विभत्स, हास्य, भयानक और अब्धुत। सूरदास ने भक्ति और वात्सल्य दो रस मिलाकर कुल ग्यारह रस माने हैं। ये नौ रस कोई काल्पनिक वस्तु नहीं हैं। काव्य शास्त्रियों ने, रस शास्त्रों के निष्णातों ने और भरत जैसे मुनियों ने हजारों हजारों मानव मन का अभ्यास करने के बाद, मानवीय संवेदनाओं की गहराई से झांकने के बाद निष्कर्ष निकाला और जाना कि मनुष्य का अंतःस्तल किन-किन विषयों में गहन रूप से उतर सकता है।

कौन सी बातें ऐसी हैं, जो मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हैं? मनुष्य मन के ऐसे कौन कौन से भाव हैं कि जिसके अनुरूप माहौल से तालमेल बैठते ही मनुष्य के मन का उस विषय में तदात्म्य हो जाता है और मनुष्य कुछ क्षणों के लिए अन्य सबका विस्मरण कर देता है। और भावावेश में खिंच जाता है।

इन सब बातों का विस्तृत अभ्यास करने के बाद उन्हें प्रमुख नौ प्रकार की रस प्रकृति युक्त मन का अनुभव हुआ। और उसके आधार पर रस शास्त्रियों ने कहा कि मनुष्य के मन में नौ प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं। और वे सारे भाव उसके अनुरूप रस की पराकाष्ठा में रस के साथ तल्लीन होकर रसमय होकर, रस में डूबकर स्थिर हो जाता है।

भावावेश की अवस्था में मनका इधर उधर भागना और भटकना बंद हो जाता है। रस शास्त्र के निष्णातों ने भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी और व्यभिचारी ऐसे विविध प्रकार माने हैं।

मन के स्थिर होने के क्षण में मनुष्य मुक्ति का अनुभव करता है। इस मुक्ति का अनुभव किसी भी कार्य में प्रवृत्त होने के बावजूद भी मिल सकता है।

मन की रसलीनता मनुष्य को एक ही विषय में तल्लीन कर देती है, यही ध्यान है। इस ध्यान में मन उसकी सहज चंचलता का विस्मरण कर देता है। यह तल्लीनता ही भीतर या बाहरी विश्व में सफलता दिलाती है। इनमें से भीतर की सफलता को योगीजन शांति और समाधि के नाम से जानते हैं।

आयुर्वेद भी नौ प्रकार के प्रकृति के लोग बताता है, इन प्रकृतियों से मन का स्वभाव बनता है। अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार मनुष्य को विविध रस में रस जगता है। यह रस उसे संस्कार में मिले हो सकते हैं। ज्यादातर तो जीन्स के अनुसार ही मनुष्य के रस के विषय होते हैं।

मेरे अभ्यास के अनुसार कहूँ तो वास्तव में मनुष्य को अपनी प्रकृति के अनुरूप काव्य में रस आता है। सर्जक और श्रोता के रस के विषय से हम उसकी प्रकृति को जान सकते हैं।

काव्य शास्त्र के आचार्य तो 'रसात्मकम् काव्यम्' कहके स्पष्ट मत देते हैं कि जिसमें रसपूर्णता हो वही काव्य है। और मेरी दृष्टि से भी रसपूर्णता के द्वारा ही आप ध्यान को उपलब्ध हो सकते हो। शब्दों के जोड़ को हम काव्य नहीं कह सकते। प्रास के जोड़ को भी काव्य मत कहना।

क्योंकि प्रासानुप्रास तो एक अलंकार है। वह तो कविता कामिनी के बाहर का सिंगार है। आत्मा के बिना गहने कोई काम के नहीं। रस तो काव्य की आत्मा है।

मैं कहूँगी, कि जिसे सुनते ही आपके भीतर से 'वाह!' अथवा 'आह!' निकल जाए वही है सच्ची कविता। फिर रस भले कोई भी हो। परंतु मनुष्य हृदय के भीतरी भावों का जो उद्दीपन कर देता है और अंतर के तारों को झंकृत कर देता है, वही सच्चा काव्य है।

जो काव्य रसिक आत्मा को शीघ्र ही अपनी पकड़ में ले ले, वही है सार्थक कविता।

अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार विशेष रसपूर्णता में श्रोता अथवा पाठक का मन विशेष रूप से तल्लीन हो जाए यह बात अलग है परंतु कविता रसिक व्यक्ति को प्रत्येक रस अभीभूत कर सकता है। अपने रस के विषयपूर्ण काव्य में उसे विशेष आनंद आता है ये बात अलग है।

काव्य रसिकों ने यह भी कहा है कि अ-रसिक व्यक्ति को कविता नहीं सुनानी चाहिए। मैं कहूँगी कि अरसिक व्यक्ति को कविता सुनाना यह साहित्यिक अपराध है। वह कविता का अपमान है। ऐसा करना यह काव्य सुनने और सुनाने वाले दोनों का अज्ञान है। ऐसी स्थिति में ध्यान और काव्य दोनों खो जाते हैं।

प्रिय साधको!

एक जमाने में राजा महाराजा अपने दरबारी कवियों के लिए अपने दरबार में विशेष स्थान रखते थे। क्यों? क्योंकि राजा महाराजाओं का मनोतनाव साधारण जन से अनेक गुना होता है। उनके चित्त के लिए शांति और प्रसन्नता अनिवार्य थी क्योंकि राज्यलक्ष्मी तथा प्रजा के हित में उचित निर्णय लेने में मानसिक स्वस्थता और प्रसन्नता अनिवार्य होती है। नेतृत्व करने वाले का अनुचित निर्णय कभी कभी पूरे राष्ट्र का अहित कर सकता है।

दरबारी कवि राजा की प्रकृति को बराबर परख लेते थे और उसके अनुसार ही काव्य रचना को विशेष रसपूर्ण बनाकर उनके मनोरंजन के लिए सुनाया करते थे। परंतु याद रहे! मैं कहती हूँ कि कविता केवल मनोरंजन का साधन नहीं है। अगर आपका रस है, आपकी क्षमता है, आपकी खोज है और आपकी तीव्रता है तो आप काव्य के रस में लीन होकर ध्यान में विलीन हो सकते हो।

एक जमाने में रसपूर्ति के साधन आज की तुलना में नहीं बत थे। आज तो फिल्मी गीत उपरांत रोज-ब-रोज की बाज़ार में आने वाले नये नये म्यूज़िक आल्बम आदमी के लिए साधारण कीमत में उपलब्ध हो रहे हैं। नेट पर से भी आप बहुत सारी चीजें निःशुल्क प्राप्त कर सकते हैं।

जिस मनुष्य को काव्य में रस है वह इन सारी चीजों से अपनी रस पूर्ति कर लेता है और प्रसन्न रहता है। सामान्य मनुष्य को तो पता तक नहीं होता, परंतु उसके सुख बहुत छोटे छोटे होते हैं। अपनी जानकारी के बाहर ही वह आत्मसुख प्राप्त कर लेता है। मैं कहूँगी कि समझ के साथ आत्मसुख को प्राप्त करना यह ध्यान है। और चेतना के केवल ऊपरी स्तर पर खुश हो लेना मनोरंजन है।

काव्य के रस के संग बहकर मनुष्य कुछ क्षणों के लिए दुनियाँ के पार चला जाता है, वह एक निर्विषयी अवस्था होती है। उसको पता हो या ना हो यह दूसरी बात है परंतु उसके पास से उन चीजों को छीन लिया जाए तो वह पागल हो जाएगा। आखिर रेडियो और मोबाईल का म्यूज़िक क्या है? ये छोटे छोटे लोगों की छोटी छोटी खुशियाँ हैं।

सुख मिलने की आशा और उसकी खोज में आप भी बरसों तक जी लेते हैं।

आज गाँवों में आत्महत्या का प्रमाण कम हो गया है, क्यों? क्योंकि छोटे से टी.वी. ने चमत्कार कर दिया। आदमी को उसके माध्यम से सुख की अनुभूति होने लगी। संगीत, शब्द और चलचित्र ने उसके जीवन में रसपूर्ति कर दी। आदमी को अकेलेपन से मुक्त कर दिया।

विश्व के अरबों खरबों लोग शाम होते ही टी.वी. के सामने बैठ जाते हैं, क्यों? क्योंकि रसपूर्ति होती है। मनुष्य की तनहाई दूर करने में रेडियो, टेपरिकॉर्डर, टी.वी. और मोबाईल फोन का बहुत बड़ा योगदान है।

पहले राजदरबारों में कविता होती थी। कवि मुशायरे होते रहते थे, काव्य रसिकों की मंडली में काव्य गोष्ठियों का आयोजन होता था। आज भी होता है, परंतु आज की कविता में राजनीति ने घुसकर कविता को भ्रष्ट कर दिया है।

ऐसी गोष्ठी और मुशायरों से तो व्यक्तिगत काव्य अध्ययन विशेष आनंद दे सकता है।

आज की कविता रंग रूप बदलकर हमारे सामने विविध रूप धारण करके एक अलग ढंग से आ गई है।

प्रिय साधको!

काव्य-पठन और काव्य श्रवण दो मार्ग हैं काव्य रस में डूबने के। काव्य अगर दृश्यश्राव्य हो अर्थात् उत्तम कवि के द्वारा उचित

हावभाव के साथ पठन हो रहा है, दाद मांगी जा रही है और समझदार श्रोताओं के द्वारा स्थान स्थान पर आवश्यक दाद दी जा रही है और बार बार विविध दिशा में से दुबारा! इर्शाद! क्या बात है! वाह! बहुत अच्छा! जैसी ध्वनियाँ सुनाई दे रही हों तो माहौल तुरंत ही एक विशिष्ट अवस्था में ले जाता है।

ऐसे माहौल में आपका मन अनेक विषयों में से एक विषय में स्थिर होता है। मस्तिष्क जल्दी शांत हो जाता है। ऊर्जा बचने लगती है, और तुरंत ही प्रसन्नता, तनावमुक्ति, फुर्ति एवं आनंद का अनुभव होने लगता है।

घनीभूत हुई ऊर्जा के दो परिणाम आते हैं; एक तो वह उर्ध्वगामी बनकर हृदय और मस्तिष्क को सशक्त करती है। देह के ऊपर के चक्रों को विशेष सक्रिय कर सकती है। और दूसरा, वह साहित्य की ओर बहकर कुछ विशिष्ट और आकर्षक सर्जन करती है अथवा बाहर की दुनियां में सफलता प्राप्त करती है।

विश्व की सारी कलाओं ने रस में से जन्म लिया है। वे सब मनुष्य ऊर्जा का उचित दिशा में बहकर वहाँ घनीभूत और विकसित होकर हकारात्मक रूप से विस्फोटित होने का परिणाम है।

काव्य रस मनुष्य के मनोभावों का विविध रूप से विरेचन भी कराता है। जिससे मनुष्य हल्का हो जाता है। जैसे कि करुण रस में आंसु बहते हैं तब आंसु के साथ मन की पीड़ा भी निकल जाती है। हास्य से बंद आदमी थोड़ा खुल सकता है।

आपने शायद सुना होगा। प्राचीन काल में युद्ध के वक्त कुछ खास चारण, भाट, और बंदिजनों को रणमैदान में बिरदावली गाने के लिए रखे जाते थे। वे योद्धा की शक्ति के पूर्ण रूप से प्रगटीकरण के लिए और युद्ध में उस शक्ति के उचित उपयोग के द्वारा विजय प्राप्त हो इसके लिए शौर्य गीत गाते थे। जिससे वीर योद्धाओं के रोम रोम में वीर खौल उठती थी और फिर योद्धा युद्ध को एक ध्यानावस्था में ही लड़ता था। उसका संकल्प बल इतना दृढ़ हो जाता था कि सामने कौन है वह गौण बन जाता था। उसका लक्ष्य एक मात्र विजय रहता था। और उसकी ऊर्जा अतिमानवीय शक्ति के रूप में प्रगट होकर रण मैदान में तांडव मचा देती थी।

हिन्दी के रासो जैसे काव्य और क्या हैं? पृथ्वीराज रासो को पढ़ेंगे तो पता चलेगा कि तीसरा नेत्र (आज्ञा चक्र) काव्य के शब्द और रस से इस तरह से खुल जाता है कि उसकी आंखों पर पट्टी बांध दो तो भी रस और शब्द की सूक्ष्मता को समझकर योद्धा उचित निशान साध लेता है और विजय प्राप्त करता है। मैं इस ध्यान की सिद्धि कहूंगी।

राजस्थान के शौर्यवान योद्धा पृथ्वीराज चौहान को जब मोहम्मद घोरी ने बंदी बना लिया था। उसके हाथ और पैरों में जंजीरों का काफी वजन डाल दिया गया था। उसकी बाण विद्या का एक बार मज़ाक उड़ाते हुए जब मोहम्मद घोरी ने कहा कि अगर उसमें दूरी और अंतर का सही नाप जानकर लक्ष्यभेद करने की क्षमता है तो उसकी आंखों पर पट्टी बांधकर मेरे दरबार में लाया जाए और पृथ्वीराज लक्ष्यवेध करके अपनी शक्ति को सिद्ध करे। तब परम शक्ति उपासक बारोट चंदबरदायी जो पृथ्वीराज के दरबारी कवि और उसके परम मित्र भी थे, उसने अपनी भाषा में पृथ्वीराज को एक ही दोहे में मोहम्मद घोरी जहाँ बैठा था उस स्थान की ऊंचाई, जो कार्य सिद्ध करना था उसका मर्म और रोम रोम में वीर रस जगाने वाला एवं एक धनुर्विद्या के ज्ञाता के लिए चुनौती जैसा दोहा कह दिया –

चार बांस चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमान।

ता ऊपर सुल्तान है, मत चूके चौहान।।

और पृथ्वीराज चौहान दोहे से मिला हुआ इशारा और प्रेरणा पर ध्यानस्थ होकर लक्ष्य साधकर सुल्तान को उड़ा देता है। यह सत्य घटना इतिहास में अमर हो गई है। यह है काव्य रस का प्रभाव।

आज की भाषा में कहें तो काव्य रस मनुष्य की सिक्स्थ सेंस को जगा देता है। जिससे अपने पक्ष में परिणाम प्राप्त करने के लिए ऊर्जा का सही क्षण पर सही विस्फोट होता है।

वीरता और रौद्रता का समन्वय रण मैदान में भयानक रस को जन्म देता है। और भीरु हृदय के सैनिक भयानक रस से त्रस्त होकर मैदान छोड़कर भाग जाते थे। नारियाँ और बच्चे चिल्ला चिल्लाकर विलाप करने लगते थे। और उस विभीषिका को सहने में असमर्थ राजा संधि का संदेश भेजता था या शत्रु की शरणागति का स्वीकार करके युद्ध को रुकवा देता था। क्योंकि रक्त की बहती हुई नदियाँ, निर्दोषों की हत्या, चील और कौवों का लाशों पर बैठकर ज़याफत उड़ाना, सियार और कुत्तों का रोना, युवतियों का शत्रुओं के द्वारा अपहरण करके उनपर अत्याचार करना ये सब विभत्सता असह्य हो जाती थी।

पुराण एवं महाभारत जैसे ग्रंथों का अभ्यास करने के बाद में कह सकती हूँ कि वीर रस, रौद्र रस, भयानक रस, करुण रस और विभत्स रस युद्ध के मैदान में एक साथ उभरते हैं।

शांत और भक्तिरस एक दूसरे से संलग्न हैं। मंदिरों में, चर्च में और गुरुद्वारों में अथवा धार्मिक स्थानों में जो भजन गाए जाते हैं वे सारे

भक्ति काव्य हैं और वे भक्ति रस तथा शांत रस निष्पन्न करते हैं। उन काव्यों का ऐसा प्रभाव होता है कि उन्हें सुनकर अशांत मनुष्य शांत हो जाए और शांत मनुष्य ध्यान में प्रवेश कर ले।

स्वाभाविक है कि धर्म स्थानों में जाने वाला मनुष्य या तो शांत प्रकृति का होगा अथवा शांति की खोज में आ पहुंचा हुआ। तब वहाँ शांतिरस पूर्ण भावगीत ही मनुष्य की विशेष मदद कर सकते हैं। शांति की खोज में आए हुए को वीर या रौद्र रस के काव्य सुनाना निरर्थक है। इसी कारण से वहाँ भक्ति संगीत बजता है।

श्रृंगार और करुण रस का भी गहन नाता है। रस शास्त्र ने इन दोनों रसों को एक सिक्के के दो पहलू जैसे बताया है। जिन्हें वे संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार कहते हैं। विश्व की कोई भी लव स्टोरी ऐसी नहीं हो सकती कि जहां प्रारंभ, मध्य या अंत में विरह न छिपा हो।

हास्य रस और अद्भुत रस कुछ खास और विशेष परिस्थितियों में पैदा होते हैं अथवा काव्य के द्वारा उत्पन्न किए जाते हैं। हास्य रस में क्षण भर के लिए मनुष्य का अहंकार विसर्जित हो जाता है और मनुष्य हल्का हो जाता है। हास्य के कारण भी मन तनावमुक्ति और प्रसन्नता का अनुभव करता है। उसके शरीर की अमृत ग्रंथियाँ विशेष रूप से उत्तेजित होकर जीवन रसों को छोड़ने लगती हैं। जिससे मनुष्य को स्वास्थ्य, सुखपूर्ण और प्रसन्न जीवन का बोध होता है। हास्यरस में भी हास्य व्यंग्य काव्यों को ज्यादा श्रेष्ठ माना है।

प्रेम और मिलन की क्षणों में श्रृंगार के काव्य आलापे जाते हैं। क्योंकि ऐसे काव्य श्रृंगार रस के उद्दीपक होते हैं।

विरह की अवस्था में कोई प्रेम, श्रृंगार और मिलन के गीत गाए तो विरोधाभास पैदा हो जाएगा। क्योंकि जहाँ प्रेमभंग हुआ है वहाँ प्रेम की पीड़ा के गीत सुकून देते हैं। विरह भाव के गीत टूटे हुए दिल की बात कर रहा है ऐसा अहसास होने से विरहाकुल व्यक्ति थोड़ा हल्का महसूस करता है। उसके मचलते हुए दिल को थोड़ा आराम लगता है। उसे लगता है कि मेरी वेदनाओं को वाचा मिल रही है। कभी कभी जो बात विरही खुद नहीं कह पाता है वह कविता कह देती है। ऐसी कविताओं में शब्द के रूप में आँसू, विरह व्यथा, तड़प, आहें, चाहें, और शिकायतें बहती हैं।

हिन्दी साहित्य के कवि भारतेन्दु हरीशचंद्र ने कहा है कि

विरही होगा पहला कवि,

आह से निकला होगा गान

विरह से पूर्ण काव्य को सुनते हुए, विरहानि में जलते हुए मनुष्य के मनोभावों का विशेष रूप से विरेचन हो जाता है और प्रत्येक विरेचन के बाद मनुष्य शांति का अनुभव करता है। वह शांति ही ध्यान की झलक है।

विरह श्रृंगार के काव्य के सुनकर विरही मनुष्य को ऐसा भी लगता है कि यह पीड़ा केवल मेरी ही नहीं है, अन्य भी कोई ऐसी पीड़ा से पीड़ित है। ऐसे लोगों के लिए विरह काव्य आधार बन जाता है। उसे लगता है कि मुझे कोई हमसफर मिल गया।

ऐसी कविताओं के भावों के साथ घुट घुट कर तड़पते दिल की टूटी हुई सारी तमन्नाओं की सारी पीड़ा आंसु के द्वारा बह जाती है। उसका दिल हल्का हो जाता है, प्रेम की पराकाष्ठा में जीने वाले विरही वास्तव में ध्यान और समाधि को उपलब्ध हो जाते हैं।

गोपियाँ जब उद्धव से कहती हैं –

उधो मन नाही दस बीस, एक हुतो सो गयो श्याम संग।

को आराधे ईस ? ऊधो मन नाही दस बीस....

यहाँ गोपियों की विरह व्यथा में योग सहज सिद्ध हो गया है। पतंजलि कहते हैं कि मनुष्य अनेक चित्तवान है। उसके पास अनेक मन हैं और चित्तवृत्तियों से निवृत्ति होने पर योग में प्रवेश होता है। गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हमारे पास तो एक ही मन था अर्थात् वे ते पहले से ही प्रेम योगिनी थीं और वह एक मन भी अब तो कृष्ण के साथ चला गया है तो अब किसी इष्टदेव को भजने के लिए दूसरा मन लाएं कहाँ से ? – इससे क्या सिद्ध होता है ? गोपियाँ अ-मनी बन गई हैं, कृष्ण के प्रेम में, उसके विरह में। इसी अवस्था को ध्यान की पराकाष्ठा अथवा समाधि अथवा योगोपलब्धि कहा है।

मन के पार जाने में गोपियों के लिए कृष्ण का विरह माध्यम बन गया। इस वियोग श्रृंगार को ध्यान नहीं तो और क्या कहेंगे ?

प्यारे साधको !

अति सूक्ष्म रूप से देखा जाए तो नौ रस हर मनुष्य में थोड़े बहुत अंश से पड़े ही हैं। भिन्न भिन्न परिस्थितियों में अथवा काव्य का माहौल खड़ा करने की क्षमता के आधार पर वे प्रगट होते हैं। परंतु उन रसों को उद्बलित करने में कवि और कविता की बहुत बड़ी भूमिका रहती है।

साधारण परिस्थिति में भी काव्य के रस के साथ बहकर मनुष्य का पहले भाव प्रवेश और फिर ध्यान प्रवेश हो जाता है।

मैं मेरे अनुभव के आधार पर कह सकती हूँ कि रसमय कविता ध्यानस्थ होने के लिए उत्तम माध्यम है।

वैसे तो काव्य शास्त्र में भाव दशा की विविध चौदह भूमिकाएं बताई हैं। परंतु उत्तम कविता कम से कम आपको हर्ष, उत्साह, वीरता, आश्चर्य, रोमांच, आंसु और प्रफुल्लितता के भाव जगत में ले जाकर आपको घड़ी भर के लिए पूरी दुनिया से मानो दूर चले गए हो ऐसा अहसास कराती है।

ध्यान का मूल उद्देश्य ही यही है कि दुनियादारी से ऊपर उठकर भावजगत में प्रवेश करता हुआ मनुष्य धीरे धीरे निजरूप में स्थिर हो जाए। अगर इसलिए आपकी काव्य रसिकता और काव्य की रसमयता आपकी मदद कर सकती है तो उसका उपयोग क्यों न करें।

प्यारे साधको!

अगर आप एक काव्य रसिक व्यक्ति हैं तो जब भी मौका मिले किसी भी रसमय काव्य को पढ़ने का या सुनने का और आपको लगे कि वह क्षण काव्य का आस्वादन करने के लिए अनुकूल है तो खो जाओ कविता कामिनी की आगोश में। और उतर जाइए काव्यरस ध्यान में।

काव्य में जब रस आने लगे तब बाहरी विश्व के लिए आपके मस्तिष्क को स्विच ऑफ कर देना। ऐसा करेंगे तो कोई आसमान नहीं टूट पड़ेगा आपके ऊपर! अगर आपने दो चार घंटा दुनियां धंधा छोड़ दिया तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा दुनियाँ को।

अचानक बीमार हो जाते हो तब क्या करते हो? कोई यूनियन हड़ताल कर देती है तब क्या करते हो? कोई नेता मर जाता है और छुट्टी घोषित होती है तब क्या करते हो? पत्नी बीमार हो जाती है तब क्या करते हो? आपकी इच्छा हो या नहीं आपको समय देना ही पड़ता है ऐसी परिस्थितियों में। आपको आपका काम आपकी मर्जी के विरुद्ध भी छोड़ना पड़ता है। तो निजानंद के लिए उसे स्वेच्छा से क्यों न छोड़ें! कब तक बने रहेंगे नौकरी, धंधा और योजनाओं के गुलाम?

प्यारे साधको!

विविध रसों के अनुभवों के लिए कुछ मेरी रचनाओं के अंश, मैं आपके रस आस्वादन के लिए यहाँ दे रही हूँ।

वीर रस

लक्ष्मण मूर्छा के समय हनुमान प्रतिज्ञा

फोड़ी पाताल शेषनाग पास जाऊँ हठी।
लेहु आन रामजी की जड़ी लेन धाऊँ मैं।।
देवन की नारि नर दैत्यन की नारि।
नाग गंधर्व की नारि से प्रणाम करि पाऊँ मैं।।
राम काज लाज मुकि 'मोहिनी' मैं स्वर्ग चढ़ी।
बारिधी बिधु से मिलि सुधा को ले आऊँ मैं।।
रावण को मारी नाभिकुंड को उखारी अमी।
लखन काज लाउँ या भक्त ना कहाऊँ मैं।।

वियोग श्रृंगार

गोपी उद्धव संवाद

तन में किशन मरे मन में किशन।
घर घर में किशन कुंज बन में किशन है।।
माखन किशन मेरी मटुकी किशन।
बंसी-वट में किशन पनघट में किशन है।।
असुवन किशन मेरी आँखियाँ किशन।
मेरा आदि किशन और अंत भी किशन है।।
'मोहिनी' किशनलाल बस्यो रोम रोम मेरे।
कहो जाई उधौ ब्रज धन ही किशन है।।

भयानक और विभत्स रस

कड़ड़ कमठ पर तूट जनु ब्रह्मांड वछूटयो,
खणण खणण रण खडग खींच-बंकाबीर छूटयो,
गड़ड़ गंग की धार जनु शिव शिर से फूटयो,
घरर घरर रथ चक्र फरर रथ धजा फरूकयो,
चकित चहुं दिगपाल रिपुदल हिरदय थरूक्यो,
छांडी छाडी जीयआश पैर जोधाने धरूक्यो,
जनु जोजन जमराज दंड पापी पर सरूक्यो,
झटपट झट रिपुनारी भाग सूत गोदी मेल्यो,
टपक टपक अश्रुधार बचावो विधवा चिल्यो,
ठहक ठहक अट्टहास रुद्र रण तांडव खेल्यो,
डटक डटक असवार वाजी पगतल रिपु छिल्यो,
ढिबांग धा ढब ढिबांग ढोल ढोलीने पीट्यो,
अणणण सणणण बहु तीर बरस बादल चहुं झूट्यो,
तणण तोप बारूद धणण धूम गोला फूट्यो,
थर थर रिपुदल थत रिपुतिय छाती कूट्यो,
दिग्द दिसत है लाल आग अंबर से बरस्यो,
धणणण धमक धरा पे गिरि गजराज गरूज्यो,
नरक नदी बह जात युद्ध ने आतंक सरज्यो,
परशु दंड किरपाण तीर तोमर सब चमक्यो,
फणणण फणिधर फिरत असों पारथ रण धमक्यो,
बं बं भोलेनाथ भवानी नाद उणूक्यो,
मानो काल कराल मुंह फैलाई झूक्यो,
रणते भाजी चले घर कायर धीरज खूट्यो,
लाल लाल नर मुंड काज चामुंडा उड्यो,
वरण वरण नर वीर वरण कर रंभा त्रूठ्यो,
षट्शीर लपट करी झपट तारका सुरने दिठ्यो,
शिव शंकर कर नयन मयन पर मानो रूठ्यो,
सडड सहस्रफन फेन गरल फूंफकारत उठ्यो,
हनत हनत रिपु सैन्य लंक हनुमानो झूम्यो,
ललकारी प्रनठान भयंकर भीष्म झझूम्यो,
ज्ञान छोरी प्रन तोरी चक्रधरी नटवर घूम्यो,
क्षण क्षण भीष्म दरस करे पारथ लगतल थम्यो,

दोहा

पर्यो धरती पे 'मोहिनी' पारथ से पितुराज ।
भीष्म तोष को पाई के व्रतसमरी व्रजराज ।।

संयोग श्रृंगार

शिव ध्यानभंग प्रसंग

अधर सुधा रस तरस बरस नव नेह नयन से

कर पद नख करी परद सरस शिव शैल सुता
मोहे अरि मदन वदन में कंप अति रोमांच अति
भरी पलक झलक गिरनंदीनी झांके
रोम रोम से छलकत मद मदमाती बैठी मुस्काती
फुलत है छाती लता की भांति सोहे कमलाक्षी
मोहे मदिराक्षी भौंहे मीनाक्षी गमन गजगामिनी
बादल यामिली जग की स्वामिनी मरकत कामिनी
सिकुड़त 'मोहिनी' कोकिल कंठी बैठी हठी भामिनी
पाई झलक एक शिव हृदय में नुपुर बजत दोऊ
झुन झनक झुन झुन छनक छुन छुन झनक झुन झुन

रौद्र रस

दर्शों दिशा भई लाल लाल लज थल नल गिरिपर
लाल मदन रति लाल अनूठी लाली पर
लाल कमल रूप कोमल मोहिनी लाली दो पद कर
लाल लाल शिव नयन कुपित भये काम के उपर
लाल लाल ज्वाला लई लाल नेत्र शिल
मदन लाल रंग भये ।

हास्य व्यंग्य

(१)

कच्छ में बार बार भूकंप के झटके आ रहे हैं
जिससे लोग बहुत घबरा रहे हैं
भविष्य जानने के लिए मेरे पास आ रहे हैं
मैं कहती हूँ भविष्य
घबराओ मत ये तो
वाइब्रेन्ट गुजरात के कार्यक्रम चल रहे हैं।

(२)

खेल महाकुम्भ

कमंडल, चीपिया, भभूत, श्वेत, भगवे, दिगंबर सब चले आए
छावनी में प्रवेश न मिलने से सब इतराए,
कुछ ने तलवार और पट्टे से खेल भी चलाए,
परंतु कोई दर्शन को नहीं पाए,
सब निराश होकर वापस आए,
और कहते गए अरे! हम तो खेल महाकुम्भ सुनकर चले आए!

भक्ति रस

बगिया के फूल हम रहे

तेरी बगिया के फूल हम बने, प्रेम नदिया के फूल हम बने

तेरी मरजी में मरजी हमारी, कोई मरजी ना मरजी हमारी
फिर भी आखिर है अरजी हमारी, तेरे चरनों की धूल हम बनें

तेरी बगिया के फूल.....

उड़े अध्यात्म के आसमां में, रुकें सत्कर्म की डालियों पर
गुन गुनाएं सदा नाम तेरा, भाव गुलशन के बुलबुल बने

तेरी बगिया के फूल.....

ध्यान सरिता में बहते रहे हम, अपने अंदर ही डूबते रहे हम
प्रति क्षण क्षण संभलते रहे हम, सूक्ष्म पाये ना स्थूल हम बनें

तेरी बगिया के फूल.....

‘ॐ सर्वात्मने नमः’ कह कर झुके हर हाल में हर दिशा में
वस्त्र के रंग बदले न बदले, राम के रंग मशगूल बने

तेरी बगिया के फूल.....

सदा नाचे कूदे और गाएं, गीत आनंद के सबको सुनाएं
बझिझक हर स्थिति में झुकाएं, ज्ञान गंगा का मूल हम बनें

तेरी बगिया के फूल.....

‘मोहिनी’ की है तुझको विनती, तू नहीं तो हमारी क्या गिनती?
जिये जीवन को जीवन समझकर, तेरे बच्चों की भूल ना बने

तेरी बगिया के फूल.....

शांत रस

सच्चिदानंद आनंद दाता

सच्चिदानंद आनंद दाता, हमको आनंद आनंद देना
प्रेम सागर तू सबका विधाता, हमको आनंद आनंद देना
तेरे गुलशन की खिलती कली हम, तेरे मंदिर की हैं धूपसली हम
बन के नदियां तुम्ही से मिली हम, हमको आनंद आनंद देना
बनके बाती दिये की जले हम, तेरी किरपा मिले और पले हम
सत्य राहों पे कायम चले हम, हमको आनंद आनंद देना
आगे बढ़कर विनय को न छोड़ें, दुःख दर्दों से मुँह को न मोड़ें
‘मोहिनी’ मन सदा तुझ में जोड़ें, हमको आनंद आनंद देना

अद्भुत रस

फिर दरिया नदिया से मिलता
और पेड़ जड़ों के बल चलता
धरती ऊपर अंबर नीचे
है होश जरा सा समझो।

अब बिन बादल बरसात भई
घर में ही बिजली कौंध गई
तारीफ हुई ये तबाही की
है होश जरा सा तो समझो।

यहाँ आब में अंगारे जलते
और ख़्वाब सभी सच में ढलते

अब कांटे में भी फूल खिलते
हैं होश जरा सा तो समझो।

ना कोई सफीना ना माज़ी
फिर भी हम जीते हैं बाजी
तैराकी तिलस्मी से बहते
हैं होश जरा सा तो समझो।

ये किरने कहाँ से आती हैं ?
ना दिया है ना बाती है
जो रस्ता नया दिखाती है
हैं होश जरा सा तो समझो।

यहाँ बिन बाती उजास भया
पैगंबर मेरे पास भया
अब बिन गोपियन का रास भया
चाहे मानो या ना मानो।

यहाँ चंदा है पर दाग नहीं
यहाँ सूरज है पर आग नहीं
है खुशबु पर कोई बाग नहीं
चाहे मानो या ना मानो।

अब त्याग नहीं कोई भोग नहीं
कोई अपने पराये लोग नहीं
दिन रैनी योग-वियोग नहीं
चाहे मानो या ना मानो।

यहाँ बिन झांझर झंकार हुई
बिन नाचे थैथैकार हुई
बिन नारा जय जयकार हुई
चाहे मानो या ना मानो।

वात्सल्य रस

सो जा मेरा राजदुलारा

सो जा मेरा राज दुलारा, प्यारी माँ का सबसे प्यारा
जाग से न्यारा रे, सो जा मेरा राज दुलारा.....।
छोटी तितलियां कलियां बगियां, चांद सितारे सजके रतियां
तोहे सुलाये रे, सो जा मेरा राज दुलारा.....।
आंचल का मैं छत्र धराऊं, गोदी की मेरी गादी बिछाऊं
राजा बेटा रे, सो जा मेरा राज दुलारा.....।
राजधानी तेरी हिरदय मेरा, कोई न छीने राज ये तेरा
'मोहिनी' मूरत रे, सो जा मेरा राज दुलारा.....।

प्रिय साधको!

अगर हाथ में अच्छी कविता आ गई अथवा कोई कवि मित्र मिल गया अथवा ऐसा माहौल मिल गया कि जहाँ आपको गुंजाईश लगती है काव्यरस ध्यान में उतरने की तो वहाँ तुरंत बैठ जाओ, समर्पित हो जाओ कविता को, डूबते जाओ कविता के भाव में, रंग जाओ कविता के रंग में।

रस रूप बन जाओ, घुल जाओ काव्य रस में, उसमें विलीन हो जाओ, बह जाओ काव्य प्रवाह में। कविता पूर्ण होने के बाद एक स्तब्धता छा जाएगी। जब ऐसा हो तब निःशब्द के जगत में प्रवेश कर लो और उस निःशब्द में बहते हुए परमबोध, निरव शांति और आपकी उपस्थिति होते हुए भी आपकी गैर मौजूदगी का अनुभव कर लो। यही है ध्यानावस्था।

धरणा - ६९

छंदलयप्रवेश ध्यान

प्रिय साधको!

आपके भीतर एक छंदमयता है। आप उस छंदमयता के कारण ही चलते, फिरते, बोलते, खाते और पीते हो। आपके श्वास की गति छंदमय है। आपका हृदय छंदबद्धता से धबक रहा है। आपके रक्त के प्रवाह की गति में भी एक लय है। देह के भीतर रमते हुए छंद का आपको पता हो या नहीं हो ये बात अलग है परंतु एक बात याद रहे कि उस छंद का टूटना अस्वस्थता है। लयबद्धता में चलते रहना स्वस्थ जीवन है और छंद का बिखर जाना है, मृत्यु।

अगर रस काव्य की आत्मा है तो छंद काव्य का देह लालित्य।

कविता के दो पक्ष हैं – भावपक्ष और कलापक्ष। रस भावपक्ष का मुख्य आधार है तो छंद कलापक्ष का। दोनों पक्ष जब उत्तम होते हैं तब ऐसी कविता आपको सहजता से ध्यान में ले जा सकती है।

जैसे काना, कुबड़ा, लूला या लंगड़ा शरीर असुंदर दिखता है वैसे ही काव्य कामिनी ही उचित छंद के बिना अधूरी लगती है।

पूरा ब्रह्मांड छंदमय है। सागर की लहरों में एक छंद है, उसी छंदत्व में एक के बाद एक लहरें बनती हैं, किनारे तक आगे बढ़ती हैं और बिखरती हैं। नदी का एक अपना छंद है। उसी छंद में उसका प्रवाह बहता है। विविध ऋतुओं के अनुसार प्रकृति का छंद भी बदलता रहता है। और उसके अनुसार नदी की लय भी कम होती है या बढ़ती है।

वर्षा काल में नदी द्रुत लय में बहती है, जाड़े में मध्य लय में और गर्मी के मौसम में विलम्बित लय में। पवन का अपना एक अलग छंद है। उसकी गति भी मौसम के अनुसार बदलती रहती है।

छंद की बहुत बड़ी महिमा है। छंद मनुष्य के भीतर और बाहर की एक कुदरती व्यवस्था है।

कविता में छंद टूटता है तब आस्वादन का मजा बिगड़ जाता है। शरीर का छंद टूटता है तब स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। दिल का छंद टूटता है तो आदमी बिखर जाता है। पारिवारिक छंद टूटता है तो जीने का मजा बिगड़ जाता है। कुदरत का छंद टूटता है तो विश्व पर आपत्तियाँ आ सकती हैं।

आजकल अ-छांदस कविताएं लिखने की फैशन निकली है। उसमें ३-कवि का कवि बनने का शौक ज्यादा काम कर रहा है। ऐसी कविताओं में गद्यात्मकता ज्यादा और गेयता कम होती है। मैं अछांदस काव्यों के विरोध में नहीं हूँ। परंतु छंद के पक्ष में अवश्य हूँ।

छंदमयता कविता के ढाँचे को सौन्दर्य बक्षती है। छंदमयता की वजह से काव्यपठन को भी एक सौन्दर्य और लय प्राप्त होता है। और श्रवण रुचिपूर्ण लगता है। छंद से कविता की प्रभावकता बढ़ जाती है। छंद और लय का प्रगाढ़ नाता है। वैसे तो अछांदस काव्य में भी बिठाने वाले लय को बिठा देते हैं। कभी कभी शब्दों के चयन की वजह से लयात्मकता होती भी है, परंतु उसमें स्वाभाविकता, सहजता, गेयता एवं गतिमयता तथा सौम्यता का इतना बोध नहीं होता जितना छांदस कविता में होता है।

कविता की छंदमयता में पाठक अथवा श्रोता को अनुभव होता है कि एक के पीछे दूसरा शब्द स्वयं खिंचा आ रहा है। कुछ ही पंक्तियों के बाद उसके साथ मनुष्य का चित्त स्थिर हो जाता है। छंदमयता मनुष्य के भीतर एक नृत्य को जन्म देती है। एक डोलन को पैदा करता है।

छंद आपके रोम रोम में एक आंदोलन पैदा करता है। वह एक हकारात्मक आंदोलन होता है। उत्तम छंद श्रवण से शरीर के समग्र धातु सहित प्रत्येक कोष प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। रोम रोम जीवंत हो जाते हैं।

उत्तम छंद श्रवण से शरीर तनावमुक्त हो जाता है, थकान उतर जाती है, चित्त शांत हो जाता है, मन अपनी चंचलता को भूलकर छंदप्रवाह में बहने लगता है। यह विलीनता ही महाशांति में प्रवेश है वही ध्यानावस्था है।

वैसे तो छंदों के अनेक अनेक प्रकार हैं। विविध भाषाओं के अनुसार विविध छंदों की खोज हुई है। रस की आवश्यकता के अनुसार छंदों का प्रयोग होता है। कौन से रस में कौन से छंदों को प्रयोजना, यह भी एक कला है।

मैंने देखा है कि उर्दू या हिन्दी गज़ल के छंद अलग होते हैं और संस्कृत काव्य के छंद अलग। रस के अनुसार प्रयुक्त हुआ छंद मनुष्य को ध्यान में ले जा सकता है। रस को ध्यान में रखकर जब छंद का प्रयोग होता है तब काव्य की आत्मा और कलेवर दोनों निखर उठते हैं।

जैसे मनुष्य की चाल पर से बहुत सारी बातें स्पष्ट हो जाती हैं वैसे ही छंद का है। छंद है कविता की चाल का ढंग। ढंग से चलने वाला आदमी जैसे दूसरे को जल्दी प्रभावित कर सकता है वैसे ही काव्य का उचित छंद श्रोता अथवा पाठक को जल्दी ही अपने संग में बहा ले जाता है।

काव्य का छंद एक लय को जन्म देता है। वह लय प्रवाह आपके रक्त प्रवाह को सीधा प्रभावित करता है। और दोनों के बीच में तन्मयता घटती है। वह तन्मयता ही समाधी है।

कविता के छंदोच्चार के पीछे अथवा उसके गायन के पीछे वाद्य चलता है और वाद्य के पीछे नृत्य चलता है। गायकी को संगीत में उत्तम कहा है, गायकी को प्रधान माना है। इसका कारण ही है कविता का छंदत्व। छंद के बिना कविता को गाना दुरुह बन जाता है।

काव्य की गेयता एक छंद का रूप धारण कर लेती है। मैं कहती हूँ कि गेयता को खास मात्राओं में और शास्त्रीयता में बांधकर विद्वानों ने छंद बनाए हैं। परंतु मेरा मानना है कि लिखित छंदों से अलिखित, अव्याख्यायित और गर्भस्थ छंद ज्यादा हैं।

मेरी समझ है कि विश्व में जो कुछ भी खोजा गया है उससे काफी चीजें अनखोजी हुई हैं। मनुष्य की आवश्यकता के अनुसार वह नई नई चीजों को खोज लेता है और कुछ पुराना जो वर्तमान संदर्भ में मनुष्य को आवश्यक नहीं लगा वह छूटता भी जाता है।

मनुष्य ने कठिन चीजों को हमेशा सरल बनाया है। यह मनुष्य चित्त की उपज और क्षमता है। फिर भी जहाँ तक ध्यान का लेना देना है वहाँ पुराने या नए छंद स्वरूप से लेना देना नहीं है। क्योंकि छंद में केवल शब्दों का चलन और गुथनी के प्रवाह पर हमें झूमना है। उस प्रवाह में लीन होना है।

प्रिय साधको!

अगर आपका चित्त काव्यप्रेमी है, आपको कविता सुनना या पढ़ना अच्छा लगता है, तो ढूँढ लो मौका काव्य पठन या श्रवण का। अगर आप केवल श्रोता हो और काव्य पठन कोई और कर रहा है तो भी इतने सजग रहो कि काव्य पठन ढंग से हो रहा है कि नहीं। यहाँ केवल श्रोता बनने से नहीं चलेगा, आपको सजग भी रहना पड़ेगा।

छंद स्वयं में भले पूर्ण हो परंतु पठन करने वाले में लयबद्ध पठन करने की क्षमता और स्पष्ट उच्चार करने की क्षमता नहीं है और बार बार छंद टूट रहा है तो ऐसा श्रवण आपको ध्यान में नहीं ले जा सकता। उत्तम पाठक की ध्वनि भी छंद के गठन के साथ आरोहित, अवरोहित, मंद, मध्य और तीव्र होती रहेगी।

छंद गान और छंद पठन में फर्क है। छंद गान एक गुरुमुखी विद्या है। प्रत्येक छंद प्रत्येक व्यक्ति नहीं गा सकता। वेद और उपनिषद् के कई मंत्र ऐसे हैं कि जो संस्कृत का जानकार पढ़ लेता है परंतु सामगान हर व्यक्ति नहीं कर सकता।

प्रत्येक छंद के गाने का ढंग भिन्न भिन्न होता है। वह गान शैली आपको छंद के भीतर भरे रस का अनुभव करा देती है। छंद की गेयता आपके चित्त को उसके रस में स्थित कर देती है। प्रत्येक रस का अंतिम परिणाम तो शांति ही है। इसीलिए मैंने इसको एक ध्यान विधि की तरह लिया है। और हजारों लोगों पर सफल प्रयोग भी किया है।

छंद पठन भी सुंदर और अब्दुत लगता है परंतु पठन में शीघ्रता हो सकती है। गान में लय धीरे धीरे विकसित होती है। फिर भी मध्यम गति से हो रहा काव्य पठन आपके चित्त को शब्दों के अर्थ में प्रवेश कराने के साथ साथ उसके भावों में उतरकर आपको आपके भावों का उद्गार भी करा सकता है।

प्रिय साधको!

स्पष्ट उच्चार के साथ भाव पूर्ण हृदय से लय को अखंड रखते हुए वाणी में ओजस्विता के गुणयुक्त वक्ता मिले तो उसके सानिध्य में बैठ जाओ और संभव है तो फरमाईश करो अपनी पसंद की कविताएं सुनने की।

एक दूसरी बात का खास ध्यान रहे। ऐसा मौका आने पर बुद्धि को ज्यादा तकलीफ मत देना। छंदों का ज्ञान यहाँ आपको परेशान कर सकता है। हो सकता है कि आपका छंद शास्त्र पढ़ा हुआ चित्त ऐसे पावन मौके आने पर पाठक के छंद की मात्रा का हिसाब किताब लगाने में पड़ जाए। रदीफ काफिया की गलतियाँ खोजने लगे। अगर आपने ऐसी हरकतें शुरू कर दी तो समझना कि आप चूक गए ध्यान को।

आपको छंद के शास्त्र में नहीं पड़ना है। शास्त्र तो एक प्रेरणा है। उसे गले बांधकर घुटन पैदा नहीं कर लेना। छंद शास्त्र हिसाब किताब से चल सकता है, ध्यान हिसाब किताब का विषय नहीं है। वहाँ तो समर्पित हो जाना है शांति और प्रसन्नतापूर्ण माहौल को। काव्य के छंदों को सुनते वक्त आपका मस्तिष्क अगर मात्राओं की गिनती में पड़ गया तो समझना कि आपने खो दिया ध्यान का आनंद।

मेरी बात को समझने की कोशिश करना। मैं शास्त्र का स्वीकार भी कर रही हूँ और उसके पार जाने को भी समझा रही हूँ। छंद बंधारण एक शास्त्रीय बात है परंतु अगर प्रश्न उठाया जाए कि पहले छंद बना कि शास्त्र? तो निःशंक कहना ही पड़ेगा कि पहले छंद अस्तित्व में आए, बाद में शास्त्र।

वाल्मीकि रामायण की भूमिका कहती है कि क्राँच पक्षी के उड़ते जोड़े में से किसी पारधि ने एक का वध कर दिया और दूसरे की तड़प को देखकर वाल्मीकि के मुँह में से शाप स्वरूप कुछ वेदना पूर्ण लयबद्ध शब्द निकल गए, वह बन गया छंद। फिर उसी छंद को लेकर वाल्मीकि रामायण आगे बढ़ी।

छंद शास्त्रियों ने तो ऐसे छंदों पर बाद में छानबीन करके बताया कि कौन से छंद में कितनी मात्रा होती है। गेयता में कहाँ क्षणिक रुकना है, कहाँ आगे बढ़ना है और कहाँ विराम देना है? लक्षणों के अनुसार क्या नाम देना है?

मैं कहती हूँ कि छंदशास्त्र से कोई छंद सीख नहीं सकता। और अगर किसीने सीख भी लिया तो वह उतना हृदय स्पर्शी और सहज नहीं बन पाएगा। ऐसे कवि कर्म में सर्जक का आयास प्रयास स्पष्ट रूप से नज़र आएगा। जबरदस्ती मात्रा में बिठाए गए शब्द भेद खोल देंगे और कहेंगे कि हम स्वयंस्फूर्त और सहज स्फूर्त नहीं हैं। हमें तो यहाँ तोड़ मरोड़ कर छंद को पूरा करने के लिए तुकबंदी से बिठाया गया है।

मेरा अनुभव है कि छंदबद्ध काव्य का सहज जन्म होना, यह एक कुदरती बक्षीस है। वह एक लय है जो कहीं से एक बार सुन लेने के बाद सच्चे कवि के अंतरमन तक उतर जाती है और फिर जब उस मिजाज का काव्य भीतर आकार लेने लगता है तब अंतरमन में पड़े हुए छंददेह में वह काव्य प्रवेश करके एक विशेष स्वरूप धारण करके प्रगट हो जाता है। अथवा

एक दूसरी बात भी ध्यान रहे, रस निष्पत्ति तो गद्य और पद्य दोनों से हो सकती है परंतु नृत्य तो केवल छंद की लय से ही जन्म लेता है।

कभी कभी सर्जक के भाव और शब्दों के अनुसार विशिष्ट गेयता के साथ नए नए छंद भी आकार लेने लगते हैं परंतु जन्मजात कवि के लिए ही ऐसा संभव है।

कवित्व शक्ति रक्त में मिला हुआ एक उपहार है। उसे बाहर से पाया नहीं जा सकता। अभ्यास और प्रयास से सर्जक थोड़ा बहुत विकसित हो सकता है। फिर भी मैं कहूँगी कि कोई किसीको कवि बना नहीं सकता। कवि तो अवतरित होता है।

आप किसीको साधु, डॉक्टर, इंजीनियर, नेता और अगर चाहें तो भगवान भी बना देंगे परंतु किसी को सफल कवि बनाने का कोई उपाय नहीं है।

संस्कृत कवि चंद्रशेखर कहते हैं कि उत्तम काव्य कीर्ति के पंख पर बैठकर साहित्य के आकाश में चिर काल तक विहार करता रहता है।

संस्कृत वाङ्मय के कुछ ऐसे अद्वितीय नमूने आज भी भाषा अथवा भाव को न जानने वालों को भी एक विशिष्ट भाव जगत में ले जा सकते हैं। जैसे कि पुष्पदंत रचित महिम्न स्तोत्र, रावण कृत शिवतांडल स्तोत्र, अगस्त्य रचित दुर्गा सप्तशती की शक्रादय स्तुति, व्यास रचित गोपीगीत, शंकर रचित कृष्णाष्टक, भवन्याष्क और शिवोहं स्तोत्र इत्यादि।

प्यारे साधको!

उपरोक्त सभी स्तोत्र गाए जाते हैं भारतीय समाज में। परंतु गाने वालों में से कितने लोग जानते हैं उसका अर्थ और भावार्थ? कौन समझता है उसकी भाषा की गहनता को? फिर भी सम्मोहित हैं। लोग विवश हो जाते हैं उसे गाने के लिए। कुछ लोग नहीं गा पाते तो भी गाने की कोशिश करते हैं। क्यों? क्योंकि छंद का चमत्कार, गेयता, लय, इन सबका प्रभाव मनुष्य को खींच लेता है अपनी ओर।

संस्कृत साहित्य और भक्ति साहित्य के उपरांत भी कुछ साहित्य ऐसा है कि जिसे जानने वाले लोग उसके पीछे पागल हैं। जैसे कि नरहरि कृत अवतार चरित्र, ब्रह्मानंद रचित छंद रत्नावली, पृथ्वीराज रासो, पांडव यशेन्दु चंद्रिका, रसिकबिराही रामायण, केशवसुधा, बिहारी सत्सई, प्रवीणसाग, घनानंद के सवैया आदि।

इन सारे ग्रंथों के अपार प्रभाव का मैंने अनुभव किया है। और उन ग्रंथों के कुछ विशेष छंद मनुष्य को ध्यानस्थ करने में मदद करते हैं।

प्यारे साधको!

अगर आप कविता प्रेमी हैं, काव्य पठन आपको प्रिय है और अस्खलित वाणी से जो छंद को पढ़ सकते हैं, ऐसे साधकों के लिए मेरे द्वारा ही रचे गए कुछ विशेष छंद प्रस्तुत कर रही हूँ। जो आपको शांति, सहजता से झूमना, कभी कभी नृत्य, आनंद और अद्भुतता के विश्व में ले

जा सकते हैं। अगर ऐसा हो गया तो ये छंद और विश्व के साहित्य का किसी भी सुंदर छंद आपको ध्यान में ले जा सकता है। छंद के पठन और श्रवण के बाद अवाक् मनोदशा का अनुभव करेंगे। ऐसे अनुभव के बाद जितना संभव हो उतना मौन रहना।

सुनर्तक नटावतार

चंचल अति चपल चाल नेत्र तीन चंद्र भाल
कंठ उग्र ब्याल माल भभूत अंग छाजे
जटा जूट गंगधार कर में त्रिशूलधार
नट नटवरनाथ आज नटखट अति भासे

विविध राग रागिनी भैरवी सुहागिनी
सप्त स्वर व्यापिनी तान कण्ठ सोहे
उमा बड़ भागिनी विश्व की विलासिनी
सर्व लोक वासिनी शंभु में मोहे

धा न धा न धाकिट तिकिटताकिट तिकिट नाचे जो
थूं थूं तत् तत् थै थै चक्रधार रावेशऽ
धिधकट गदिगिन धा ता ताल त्रिविध बाज सो
'मोहिनी' नटराज आज हिमगिरि गृह छाजे

घननननन घनघरीका कटि चर्म केहरि का
भूचरी खेचरी का नाथ अति डोले
लै वसंततिलका का क्वचित छंद पद्धरिका
मूर्च्छना श्रुति स्वर का शृंगी भेद खोले

गले मुंड माल करिखाल धरे डरे बाल
काल महाकाल शनि राहु ध्यान धारे
महिमा अपार भूमि भार हरे दुष्ट मार
सर्व पाप जार दुःख तार जन उद्धार

भव सागर करे पार त्वरित कामना संहार
भक्त जो करे पुकार शीघ्र ही उगारे
सर्व रोग को विदार छार करे कर्म भार
तार फेरो बार बार "मोहिनी" उच्चार

रुद्र बड़ौ है उदार देहवीणा तार तार
छेड़ो अँकार बेड़ो पार जीव लाधे
निराकार निर्विकार लीला नट की अपार
दुनिया बेकार खरो यार शिव लागे

निराधार को आधार राखे न लेश भार
दातारों का दातार वेद सार शोभे
है नगद नहीं उधार साफ साफ कारोबार
नहीं कोई कारभार फिर भी जग लोभे

पूरो संसार असार खोजो शिव का दयार
छोरो जग का जुआर मुक्ति द्वार भोरो
शिव के दरबार दर पे आवे जो बार बार
हो निहाल अंतर जो कर विचार थोरो

ढैं ढैं ढैं ढोल बाज टैं टैं शहनाई साज
दा द्रगड़ मृदंग नाद डमरू डिं बाजे
नट के सब सजि साज नाचे जगनाथ आज
प्रिया 'मोहिनी' के काज महेश्वर विराजे

विष्णु के मृत्यु से देवों की जगदंबा को स्तुति

नमामि मा महेश्वरी जगत निकाय ईश्वरी ।
नमो नमः सुरेश्वरी नमो सदा 'हरेश्वरी' ॥
भूमि तूही तू प्राण तू अपानयानुदान तू ।
समान ध्यान ज्ञान तू विश्व विज्ञान तू ॥
तू धी धृति कृपा तू शांति कांति शुभगति ।
जया तू विजया तू स्पृहा विद्या दया महामति ॥
लज्जा तू कीर्ति तू स्पृहा मायामहा बहुरूपा ।
गायत्री धात्री किर्तिश्रद्धा महा सद्गुणा ॥
दया करी माँ विष्णु को तुम पुनर्जीवित करो ।
सूरयज्ञ को पूरन करो रक्षित वत्सको करो ॥
प्रगट भई प्रसन्न भई सुरलोक में जय जय भई ।
जय 'मोहिनी' माँ भगवती स्वस्तिरूपा भई ॥

नरसिंह अवतार वर्णन

केश लट्ठा पट्टा मोट्टा
जटाळा जोगाळा मथ्था,
रंता रंता दंता लांबा
त्रिशूळा भासंता नखखा,
फट्टा फट्टा दैत्य पखखा
हाहाकार दशे दखखा,
रूखखा रूखखा नरसिंघा
देव दानवादि कम्पा,
थंपा थंपा शेष सबै
सागरा सुमेरा संग्ता,
फंगा फंगा हिरणाक्ष अंगा
रूधिरा वहंता जंघा,
हथ्था मथ्था जठरा चिरंता
विभु रुद्र अंखा,
कर जोरि भक्त प्रह्लाद
परे पगगा,
कहे 'मोहिनी' डरंता

चौद लोक खंगा,
डरंता ब्रह्मांडा बरू
भक्त ना डरंता,
जय जय नरसिंघा
जय जय नरसिंघा ।।

गंगा स्तुति छंद

जय जय भागिरथी जय जय प्रभावती अलकनंदा माँहर हर गंगे ॥
जय जय विष्णु पदी जय जय माँ ज्हानवी जय जय मंदाकिनीहर हर गंगे ॥
जय जय तू तारिणी विश्व पाप हारिणी भक्ति मुक्ति धारिणीहर हर गंगे ॥
जय विशुद्ध वारिणी भक्त उद्धारिणी सर्व सिद्धि कारिणीहर हर गंगे ॥
शिवगान मुग्धता कृष्णअंग उत्पन्ना आदि अन्नादि माँहर हर गंगे ॥
शिव जटा प्रतिष्ठिता रसरूपा तू ज्येष्ठिता प्रतिलोक संस्थिताहर हर गंगे ॥
कार्तिपूर्णी प्रगटिता गोपपोपी आवृता दिव्य गुणधारिताहर हर गंगे ॥
गो लोक से प्रवाहिता शिव जटा समाहिता सर्व विश्व आवृताहर हर गंगे ॥
कोटि लक्ष योजना द्वि कोटि लक्ष योजना षष्टलक्ष योजनाहर हर गंगे ॥
दशयोजना क्वचित क्वचित अल्पयोजना निर्जरा संयोजनाहर हर गंगे ॥
सहस्रलक्ष योजना दश लक्ष योजना शतः लक्ष योजनाहर हर गंगे ॥
बहु योजना क्वचित क्वचित अल्पयोजना निर्जरा संयोजना रूपाहर हर गंगे ॥
गोलोक वैकुण्ठ शिवलोक में प्रवाहिता ब्रह्मलोक व्यापिताहर हर गंगे ॥
ध्रुवलोक चंद्रलोक सूर्यलोक में स्थिता तपलोक में प्रवाहिताहर हर गंगे ॥
पाताल में प्रवाहिता इन्द्रलोक वंदिता शिवलोककी निवासिताहर हर गंगे ॥
सर्वजीव भोगिता पावनी तू योगिता विष्णु की वियोगिताहर हर गंगे ॥
दुग्धवर्णि माँ मलयवर्णि माँ चंद्रवर्णि माँहर हर गंगे ॥
पुण्यधारिणी माँ ज्ञानकारिणी माँ पापजारिणी माँहर हर गंगे ॥

कोटि अधनाशिनी काम क्रोधनाशिनी मोह नाशिनी माँहर हर गंगे ॥
गर्वनाशिनी अज्ञान नाशिनी माँ दुष्टनाशिनी माँहर हर गंगे ॥
सर्वरंजनी माँ गर्वगंजनी माँ शिवरंजनी माँहर हर गंगे ॥
ऋषिरंजनी निर्जरो में जनजनी सर्वदा निरंजनीहर हर गंगे ॥
तृषा तोषिनी तू सर्व जीव पोषिनी गुप्त कोषिनी माँहर हर गंगे ॥
गंभीर घोषिनी सदा पाप षोषिणी सदा जलरूपा योषिणीहर हर गंगे ॥
जय जय केशव प्रिया जय जय कवि प्रिया जय ऋषि मुनि प्रियाहर हर गंगे ॥
जय जय कृषक प्रिया जय जय भारत प्रिया जय जय शंकर प्रियाहर हर गंगे ॥
जय स्वास्थ्य दायिनी जय मुक्ति दायिनी ध्यानदायिनी माँहर हर गंगे ॥
जय पुष्टि दायिनी तुष्टिदायिनी माँ धनधान्य दायिनीहर हर गंगे ॥
जय जय भक्ति रूपा जय जय राधा रूपा प्रेम धारारूपाहर हर गंगे ॥
जय जय माता रूपी लोकमाता रूपी जीवनधारा रूपीहर हर गंगे ॥
निकाय ब्रह्मांड में सर्वलोकपूजिता लोकहित दूजिताहर हर गंगे ॥
जय जय निरोगिता प्रतिपल नवोदिया रुद्र से पराजिताहर हर गंगे ॥
जय जय फलफूलदा जय रसदा अन्नदा जय जलदा जीवनदाहर हर गंगे ॥
जय जय जय वृक्षदा जय जय वरदा सदा जय जय जय हो सदाहर हर गंगे ॥
जय जय तरंगिणी जय जय रसरंगिणी जय जय उच्चरंगिणीहर हर गंगे ॥
जय जय तू कामिनी जय जय किल्लोलिनी जय जय चित्तलोलनीहर हर गंगे ॥
जय जय हिमवासिनी जय जय उल्लासिनी ब्रह्मरूप वासिनीहर हर गंगे ॥
जय जय चपला माँ जय जय तू चंचला अचलांविचला चलाहर हर गंगे ॥
जय जय मन डोलनी जय जय चित्तचोरनी नृत्य में तू मोरनीहर हर गंगे ॥
जय जय सुजलां माँ जय जय सुफलं माँ जय जय शीतलां माँहर हर गंगे ॥

जय नमोस्तु निर्मलाम जय नमोस्तु कोमलाम जय नमोस्तु निर्मलाम

.....हर हर गंगे ॥

जय जय माँ तिर्थदा जय जय तू किर्तिदा जय जय जय स्फूर्तिदा

.....हर हर गंगे ॥

जय जय सुमतिदा जय जय माँ शक्ति दा ज्ञान कर्म भक्तिदा

.....हर हर गंगे ॥

जय जय सुरतालमयी मंद्र मध्य द्रुतमयी गान तान ध्यान मयी

.....हर हर गंगे ॥

विविध रंगरागमयी मूर्च्छना-श्रुतिमयी गीत वाद्य नृत्यमयी

.....हर हर गंगे ॥

जय जय आनंदमयी प्रतिपलनवरूप मयी धैर्य गांभीर्य मयी

.....हर हर गंगे ॥

जय जय माँ तत्त्वमयी सत्यशीलप्रेममयी जप तप व्रत नेममयी

.....हर हर गंगे ॥

अवर्णनीय सोहिनी विरक्त चित्त 'मोहिनी' ऋषिहृदय संमोहिनी

.....हर हर गंगे ॥

शुद्ध चित्त प्रबोधिनी रोग संशोधिनी सदा संबोधिनी

.....हर हर गंगे ॥

जय जय भयकारिणी जय जय भयहारिणी सर्वदुःख निवारिणी

.....हर हर गंगे ॥

शांतनु सहचारिणी वसु उद्धारिणी भीष्ममात तारिणी

.....हर हर गंगे ॥

जय जय सरितेश्वरी जय जय जलेश्वरी जय गोलोकेश्वरी

.....हर हर गंगे ॥

विष्णु चरणेश्वरी दिव्य देहेश्वरी जय जय हरेश्वरी

.....हर हर गंगे ॥

सृष्टिगान

एकांत से तो शांत हूँ
एकाकीपन से अशांत हूँ
मैं वेद हूँ वेदांत हूँ
पर अकेला दिग्भ्रांत हूँ
ब्रह्मा ने मन चिंतन किया
विकल्प सृष्टि का किया
और एक से अनेक का
संकल्प ब्रह्मा ने किया
प्रारंभ में रचे पंचभूत
पुनि सृष्टि का अद्भूत रूप
अवनी अपार अंबर अपार
महासप्त सागर भी अपार
नभचर अपार थलचर अपार

जलचर अचर विचर अपार
दिन में रवि की रोशनी
और रैन चंद्र की चांदनी
प्रातः में ऊषा का सिंगार
हर शाम संध्या रूप अपार
लाखों सितारे झिलमिले
बहु वृक्ष बेलि फूल खिले
धरती स्तनों से पर्वतें
जो बहाये नदीयाँ गर्व से
शिशिर वसंत और ग्रीष्म से
वर्षा शरद हेमंत से
बहु सजी सृष्टि सुंदरी
पर क्या ये गूँगी विस्तरी ?
ब्रह्मा भये उद्विग्न से
व्याकुल मन से खिन्न से
अब क्या करूँ ? मैं क्या करूँ ?
सर्जक मैं विसर्जन करूँ ?
नहीं शब्द तो संवाद क्या ?
नहीं नाद तो है स्वाद क्या ?
बिन ध्वनि तो सृष्टि सूनी
सुर ताल बिन मिथ्या बूनी
संसार है कि है स्मशान ?
इसमें न सृष्टा की है शान
अकुलाई सुमिरि सरस्वती
प्रगटी वीणा कर शुभ अति
हे शारदे स्वर शब्द दो
निज साज से आवाज दो
मूर्छित सी मेरी सृष्टि है
तव कृपा स्वर की वृष्टि है
कुछ राग दे कुछ रागिणी
सृष्टि लगे ये सुहागिनी
स्वर ताल दे श्रुति मूर्छना
हम करे तेरी अर्चना
मुस्काई तब श्वेतांबरी
हर्षित वदन से हरेश्वरी
कर कमल से छेड़े जो तार
कण कण मधुर जागी झंकार

शुभ सप्तस्वर आलोक ने
भरे प्राण सातों लोक में
थी प्रसन्न जो विश्वंभरी
तो जगी सृष्टि सुंदरी
सुर ताल से भई प्राणवान
और शब्द का उसे हुआ ज्ञान
स्वर षड्ज से भरी सांस वो
और ऋषभ से खुली आंख वो
गंधार से गाने लगी
मध्यम से मुस्काने लगी
पंचम से पूरन यौवना
धैवत से धक् धक् दिल बना
निषाद से लगी नाचने
शब्दों से ओष्ठ लगे कांपने
बोली मधुर स्वर 'मोहिनी'
पुनि शब्द मीठे सोहिनी
शिशु सम शिशिर खिलि शब्द से
मुग्धा वसंत स्वर शब्द से
पी पी पपीहे की पुकार
कुहु कुहु कोयल का सिंगार
फैली वसंत फूली वसंत
फागून में भान भूलि वसंत
झूमी वसंत धूमी वसंत
बहुरंग की होली वसंत
फिर ग्रीष्म ने गाया दीपक
वर्षा का जो था उद्दीपक
वर्षा ने फिर छेडा मल्हार
रिमझिम करे शीतल फूहार
घनघोर घन से घनन घन
बरसाये बूँद छन छननन छन
बहु बिजुरिया अति चमकती
कडडड करत नहीं थिर गति
तन मन युं सृष्टि का भीगा
और स्वर्ग धरती पर लगा
छम छम करत नदिया बही
झरनों की झम झम सी लड़ी

थै थै मयुर नर्तन किया
 फूल पे भ्रमर गुंजन किया
 सागर ध्वनि गंभीर उठी
 मानो महा उर्जा जुटी
 ऋतु शरद की बानी अलग
 हेमंत की हंसती झलक
 चर अचर को वाचा फूटी
 आहत अनाहत नहीं त्रुटी
 षट्ऋतु व्यापे शब्द ब्रह्म
 विधि प्रसन्न थे भया सुफलश्रम
 वनराज ने की गर्जना
 जंगल अभय भयभीत बना
 मृग खग उछल उड़ने लगे
 पशु पंछी सब गाने लगे
 कीडी से कुंजर ने कही
 थी बात मन में रम रही
 मानव का वेद ध्वनित हुआ
 जीवन का अर्थ फलित हुआ
 मन की प्रथम थी वो ऐषणा
 पर शब्द शक्ति की घोषणा
 फिर तो कई सृष्टि बनी
 और कई सृष्टा भी बने
 अवनी से अंबर तक यहाँ
 आये हैं जो वो रुके कहाँ
 सर्जन विसर्जन और पुनर-
 -सर्जन में कोई ना अमर
 पर शब्द शाश्वत रह गया
 शब्दों में जीवन बह गया
 शब्दों ने जीवन दे दिया
 शब्दोने जीवन ले लिया
 शब्दों की शक्ति को समझ
 खुद को न तू व्यक्ति समझ
 जा शब्द से निःशब्द में
 क्षमता वो 'मोहिनी' शब्द में

यह शब्द से निःशब्द की यात्रा है, ध्वनि से शून्य की यात्रा है। उस क्षण को चूकना नहीं। रोम रोम में चल रही, नाच रही, झूम रही लयात्मकता का गहनता से अनुभव करते रहना। वही अहंकार की गैरमौजूदगी और परमात्मा की उपस्थिति के क्षण हैं।

अकार उच्चार ध्यान

प्रिय साधको!

आध्यात्मिक रूप से देखा जाए तो 'अ' एक ब्रह्म ध्वनि है। उसके प्रारंभ से ही अकार विकसित होता है। प्रेम, पीड़ा और परमात्मा तीनों की अभिव्यक्तियाँ अकार से आरंभ होती हैं। संस्कृत बाराक्षरी के अ, आ, इ, ई और अंग्रेजी के a, e, i, o, u इन सबमें अकार ही विकसित हुआ है।

अकार एक सहज स्वर है। फिर भी भाषा के लिए, वाणी के लिए अनिवार्य है। प्रत्येक व्यंजन के साथ अकार अनिवार्य रूप से जुड़ा है। अकार श्वास की गति के साथ भी जुड़ा है। अकार की सूक्ष्म ध्वनि के बिना श्वास भी संभव नहीं और उसके बिना व्यंजन का उच्चार भी संभव नहीं। एक अर्थ में अकार की ध्वनि जीवित चेतना का प्रमाण है। व्यंजन और व्यंजन का नाता भाषा का एक अजोड़ नाता है। फिर भी स्वर का अपना एक विशेष स्थान है और खास करके ध्यान मार्ग में।

मेरी बात सुनकर ध्यान मार्ग से अपरिचित अथवा सांप्रदायिक अथवा परंपरागत धार्मिक चित्त को आश्चर्य हो सकता है। उन लोगों को प्रश्न उठाना स्वाभाविक है कि कोई वैदिक प्रचलित अथवा देव देवियों का छोटा बड़ा मंत्र नहीं और केवल अकार का जाप!

अकार के जप से महातेज कैसे प्रगट हो सकता है? अकार के उच्चार से साधक शिवरूप हो जाएगा! – हाँ, ऐसा ही होता है।

प्यारे साधको!

यहाँ अकार को किसी देव देवी के मंत्र या किसी धार्मिक धारणा के साथ जोड़ने की कोशिश मत करना उसे सिर्फ एक स्वरोच्चार अथवा आत्मध्वनि के रूप में प्रयोग में लेना है। अब जरा ध्यान से समझिए कि क्या होता है अकार के उच्चार से? अकार ही क्यों? क्योंकि अकार एक ऐसा स्वर है कि किसी भी विशेष प्रकार के आयास प्रयास के बिना अथवा वाणी के लिए उपयुक्त अव्यवस्थाओं को किसी भी प्रकार का कष्ट दिए बिना सहज स्वरोच्चार होता रहता है।

स्वर पेटी का संचलन कार्यरत होते ही जो स्वर निकलता है वह है अकार। जिसमें ज्यादा मुंह खोलने की भी आवश्यकता नहीं है। होठों को खोलने के बाद भी अ सहजता से उच्चरित हो सकता है।

मैंने देखा है कि करीब करीब गुंगे जैसे लोग अथवा जिसे भाषा का उच्चारण करने में बहुत कष्ट पड़ता है और उच्चार नहीं कर सकते हैं, ऐसे लोग भी संभव है कि अन्य मंत्र न बोल पाएं परंतु अकार उच्चार तो अवश्य कर पाएंगे।

ध्यान शास्त्र समग्र मनुष्यता को नजर में रखकर रचा जाता है। इस शास्त्र में कठिन से कठिन विधियाँ भी हैं और सरल से सरल भी।

अकार उच्चार एक सरलतम विधि है। छोटे बच्चे का सबसे पहला स्वर निकलता है अकार। जन्म समय का रूदन भी अकार ध्वनि से पूर्ण होता है। जब यह ध्वनि पर जोर पड़ता है और थोड़ा लंबा होता है तब वह बन जाता है 'आ'। बच्चे के रूदन में ध्वनित होती ध्वनि में हम अपने अंदाज से विविध ध्वनियों का भाव कर लें परंतु मेरे अभ्यास के अनुसार बच्चे के माँ के गर्भाशय के बाहर आने के बाद प्रथम उच्चरित स्वर होता है 'अ'। सर्वप्रथम सीखा हुआ और उच्चरित किया हुआ व्यंजन है तो 'म्'। यह म् बाद में माँ, मम्मा, मम्मी या अम्मी बन जाता है।

जीवन के दूसरे बिन्दु की बात करें तो जब जीवन समाप्त हो रहा हो, शरीर दुर्बल हो गया हो, वाणी क्षीण हो गई हो और शब्दोच्चार करने की भी क्षमता न बची हो तब भी अतिवृद्ध अथवा मृतःप्राय व्यक्ति जो उच्चार करता है अथवा पीड़ा की वजह से जो सहज स्वर उच्चरित हो जाता है। वह भी है 'अ'।

हमारे भाषाशास्त्री या वाणी वैज्ञानिकों ने अकार का सूक्ष्मतम अभ्यास करने के बाद ही वर्णमाला की बाराक्षरी में प्रथम वर्ण आ रखा है।

संस्कृत से निष्पन्न सारी भाषाओं में अ तो है ही। अंग्रेजी में भी 'a' है। अंत में अः हो कि 'z' परंतु अंत तो अकार पूर्ण ही है। मैं तो कहूँगी कि विश्व की सारी भाषाओं में 'अ' एक सहज और साइलेन्ट सहकारी उच्चरित होता रहता है। क्योंकि अंत में अकार के उच्चार से ही शब्द या अक्षर पूर्णता को प्राप्त करता है। कोई भाषा अपनी लिपि में इसका स्वीकार करे या ना करे परंतु यह एक शब्द-ब्रह्म का सनातन सत्य है। 'अ' ब्रह्म की तरह सर्वव्यापी है। उसे ब्रह्मस्वर कहूँगी।

अगर कोई सुंदर कलाकार सुरीले कंठ में संगीत को छेड़ना शुरू करेगा तो भी सा, रे, ग, म..... के प्रारंभ में या संगीत के किसी भी राग के प्रारंभिक आलापी में अ अनिवार्य रूप से ध्वनित होता रहेगा।

अ के संदर्भ में ये सब बातें इसलिए कह रही हूँ कि आप अकार जप ध्यान के पहले उसके महत्व को समझ लो।

कभी कभी ऐसा होता है कि जिन लोगों ने ध्यान किया नहीं है परंतु ध्यान के बारे में जरूरत से ज्यादा जानकारी इकट्ठी कर रखी है और कुछ भारी भरकम विधियों से केवल बौद्धिक रूप से प्रभावित है ऐसे लोगों के पास कोई अस्तित्वगत रूप से उन विधियों के परिणाम का अनुभव नहीं है परंतु फिर भी मस्तिष्क के बोझ की वजह से ऐसे लोग ध्यान के मूल मंत्र जैसे छोटी छोटी विधि रूप कुंजियों को समर्पित नहीं हो सकते हैं।

ऐसे लोगों को कठिन चीजों की आदत हो गई है। उनका स्वभाव सरल बातों को जटिल बनाने का हो गया होता है। वे खुद जटिल बन गए होते हैं। उनके स्वभाव की यह क्षति उन्हें विकसित नहीं होने देती। कभी कभी सीधे सरल लोग ऐसी सरल विधियों में उतरते हैं तो भी जो लोग जटिलता से अभ्यस्त हो गए हैं ऐसे लोग उन्हें विचलित करने की कोशिश करते हैं।

एक बार एक भाई मेरे पास आए और कहा कि मुझे अकार ध्यान नहीं कुंडलिनी ध्यान समझाओ। उसके लिए इस जन्म में तो कुंडलिनी जागरण की कोई संभावना ही नहीं बची थी। जटिलता तो सुलझ भी सकती है परंतु विकृतियाँ तो नष्ट होती हैं तभी उससे छुटकारा पाया जाता है। मैंने उसे कहा कि पहले में जो कहूँ यह करो। उसने कहा 'कितने समय तक'। मैंने उत्तर दिया - 'तीन महीने तक'। वह बोला कि मैं तो एक महीने के लिए ही भारत में आया हूँ। जो कुछ सिखाना है वह बीस दिन में सिखा दो। बाकी के दस दिन में मुझे शोपिंग और अन्य कामकाज निपटने हैं। मैंने उसे कहा कि किसी और गुरु के पास चले जाओ। आपकी शर्तों से मैं आपको ध्यान में नहीं ले जा सकती।

वह आदमी जटिल प्रकृति का मूर्तिमंत स्वरूप था। जो विधि सबसे सरल है, वह उसे नहीं करनी थी। वह तो ध्यान के नाम पर प्रश्नों को बढ़ाना चाहते थे। ऐसे लोगों से सचेत रहना चाहिए।

मैं कहती हूँ कि अगर किसी भी विधि में साधक समग्रता से उतरे तो छोटे से छोटी विधि कुंडलिनी जागरण का निमित्त बन सकती है।

मेरा प्रयास है कि जो जटिल प्रकृति के लोग हैं वे ध्यान की सहज, सुंदर, सरल और छोटी छोटी विधियों के द्वारा शांत होकर मस्तिष्क के स्तर पर से पहले हार्दिक और आध्यात्मिक स्तर पर जीना सीख लें। और सरल प्रकृति के लोग ऐसी विधियों से शीघ्र ही निर्मलता को प्राप्त करके आत्मप्रतिष्ठित हो जाएं।

आप कहेंगे कि ऐसी साधारण विधियों से एक अपूर्व परिणाम कैसे घट सकता है? - मैं कहती हूँ कि एक छोटे से सुगंधी सेंट की बोटल का एक हल्का सा स्प्रे आपके भीतर और बाहर के माहौल को खुशबु और प्रसन्नता से भर देता है। तो यहाँ तो आपको किसीके भी ऊपर आधारित नहीं रहना है। स्प्रे की बोटल पर भी नहीं।

अकार जप में तो सहज जाप जपते जपते निर्विचार अवस्था में पहुँचकर प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए उसमें स्थिर हो जाना है।

अनेक अनेक विषय, विचार और क्रियाओं की ओर आप जिस ऊर्जा को फैक रहे हो वह ऊर्जा ध्यान के दौरान अपने मूल केन्द्र में स्थिर हो जाएगी। जिससे आप शक्तिपूर्णता का अनुभव करेंगे।

आपका चित्त लगातार एक के बाद एक जिन योजनाओं की और इच्छाओं की श्रृंखला बनाता रहता था एक शेखचिल्ली की भांति, वह भी ध्यान में स्थिर हो जाएगा।

आपकी वाणी अजाग्रति में या जाग्रति में परंतु जो कुछ भी व्यक्त कर रही थी जिससे आपके या अन्य के सुख दुख बढ़ते थे वह ध्यान के कारण थोड़ी देर के लिए यथावत रह जाएंगे।

अकारजप ध्यान के दौरान आपका आदेश देना, प्रश्नों को करना, उत्तरों का देना या साधारण बातें करना सबकुछ ध्यान के कारण रुक जाने से वाणीकेन्द्र पर भी शांति और एकांत का अनुभव होगा।

आप जब एकांत और शांत स्थान में अकार का एक विधि के रूप में उच्चारण करेंगे, एक मंत्र की तरह उसका जाप करेंगे, तब आपके कान उसी उच्चारण में स्थिर हो जाएंगे। जिससे बाहर से आने वाले शब्दों को आपके कान नकार देंगे। क्योंकि अकार उच्चार कान के द्वारा भीतर पहुँचकर परम विश्राम को जन्म देगा। यह मेरा अनुभव है।

अगर किसी को स्वयं के द्वारा ही स्वयं में से शांति मिल रही हो तो कौन जाएगा शांति को ढूँढने के लिए कहीं दूर? एक बार शांति का अनुभव कर लेने के बाद आशांति खड़ी करने का तो कोई कारण ही नहीं बचेगा।

अकार ब्रह्मांड में उद्घोषित हुआ एक सर्वप्रथम स्वर है। शैव मत कहता है कि प्रथम ध्वनि 'ॐकार' है और शाक्तमत कहता है कि विश्व की प्रथम ध्वनि 'अंबा' है। परंतु मैं कहती हूँ कि दोनों का प्रारंभ अकार से होता है। अकार एक सनातन ध्वनि है। उसका हिन्दु, मुस्लिम, सिख या ईसाई से कुछ भी लेना देना नहीं है। अकार तो हिन्दु के ॐकार में भी है, मुस्लिमों के अल्लाह में भी है और क्रिश्चनों के आमीन में भी है।

संगीत शास्त्र से लेकर भाषा शास्त्र तक अकार की समान महिमा है। अमन की बात हो या ईश्वर की परंतु आप अ को नहीं हटा पाएंगे। अब ये छोटी सी, बड़ी साधारण फिर भी आसाधारण विधि की महिमा आपकी समझ में आ जानी चाहिए।

प्रिय साधको!

अब उतरो विधि में, किसी शांत और एकांत स्थान में प्रसन्न चित्त से बैठ जाओ। आपके पास अगर संगीत की दृष्टि से एक सुरीला कंठ है तो यह विधि आपकी ज्यादा मदद कर पाएगी। क्योंकि सुरीलेपन की वजह से आप एक ही स्थान से अ का पुनरोच्चार करेंगे। अगर आप सुरीले नहीं हैं तो कंठ के विविध स्थानों से अ का उच्चारण करेंगे।

एक अर्थ में आपके बेसुरेपन की वजह से विविध स्वरों से अ का उच्चार करेंगे तो चित्त स्थिर होने में बार बार विक्षेप होगा और उस विक्षेप का कारण आप ही होंगे। आपका बेसुरापन होगा। बार बार ऊपर नीचे होती हुई विभिन्न अकार ध्वनि के कारण आपका ध्यान भी बेसुरा हो जाएगा।

मैं इसलिए कहती हूँ कि इस ध्यान के लिए एक ही स्वर से अकार निकले, उसकी ध्वनी बार बार मोटी या पतली न हो या बार बार बदलती हुई आवाज में सुर ना लगे यह बहुत जरूरी है।

आपको यह विधि अच्छी लगती है परंतु आपको सुरीलेपन का कोई बोध नहीं है या आपकी आवाज़ सुरीलेपन में उच्चारण करने के लिए सहयोग नहीं कर सकती है तो पहले किसी प्रमाणिक संगीतज्ञ के पास बैठकर जान लो कि सुरीलापन क्या है? आपको विधि पसंद है परंतु स्वर थोड़ा बहुत इधर उधर हो रहा है तो इकतारा, तानपूरा या इलेक्ट्रिक तानपुरा जैसे किसी वाद्य का सहारा लेकर अपने स्वर के साथ उसे मिलाना सीख लो। एक बार यंत्र को सेट कर दिया तो फिर वह ऊपर नीचे नहीं होगा और उसमें से बजते हुए स्वर आपको सुरीला रखने में मदद करेंगे।

आप अगर सुर से निकल रहे हैं या लय तोड़ रहे हैं तो सुर में बिठाए हुए यंत्र से आपकी आवाज अलग पड़ेगी कि तुरंत आपको पता चलने लगेगा कि कुछ गड़बड़ हो रही है और आप फिर से अपने सुर को साध सकते हैं। अगर आप सुर में जाप नहीं कर सकते हो तो यह विधि आपके लिए नहीं है।

कम से कम चौबीस मिनट तक अकार जप करो। जप के साथ मनुष्य की आस्था आदिकाल से जुड़ी है परंतु ध्यानी को प्रश्न उठ सकता है कि अकार कोई मंत्र नहीं है कि हमारा हृदय उसके उच्चारण के लिए श्रद्धापूर्ण हो।

प्यारे साधको!

ऐसा नहीं है। विश्व का कोई भी मंत्र स्वर और व्यंजनों के जोड़ से बनता है। बीजमंत्रों में भी यही नियम लागू होता है। मैं कहती हूँ कि अकार एक ब्रह्म स्वर है। उसका मंत्र के रूप में पूर्ण आस्था के साथ स्वीकार करो। प्रेम से समग्रता से और सुरीलेपन से उतरो विधि में।

प्रारंभ में यह विधि आपको केवल अकार उच्चारण लगेगा। फिर भी आंखें मूंदकर सहजता से एक लय बांधकर अ का शुद्ध जाप जपते रहो। कुछ समय के बाद इस जाप से आपके इर्द गिर्द और भीतर एक स्वरवर्तुल पैदा हो जाएगा।

आपको पता है? संगीतखंड में रखे हुए तंतु वाद्य किसी भी एक वाद्य के कुछ समय तक बजने से सारे वाद्य के तार झंकृत होने लगते हैं। उनमें तरंगे पैदा होने लगती हैं। यह नियम हमारे शरीर के साथ भी लागू होता है। यह शरीर किसी उत्तम वाद्य से कम नहीं। बिना विक्षेप से समग्रता के साथ जपी हुई अकार ध्वनी रोम रोम को झंकृत कर देगी।

बाद में ध्वनि परिधि पर चली जाएगी। और ध्वनि में से आनंद ध्वन्यात्मक होने लगेगा। केन्द्र में आनंद, शांति और स्थिरत्व रहेगा।

लगातार तीन महीने की साधना के बाद आप बदल जाएंगे। फिर आपका सुनना, बोलना, सोचना, चलना, उठना, सब सम्यक हो जाएगा। आपके भीतर और बाहर एक गहन शांति का साम्राज्य छा जाएगा। वही परमात्मा की उपस्थिति है।

धरणा - ७१

घटिकायंत्र ध्यान

प्रिय साधको!

अब मैं एक बहुत सरल, स्वाभाविक और सहज प्राप्य ध्यान विधि की ओर ले जा रही हूँ। कभी कभी छोटी छोटी चीजें बड़ी मदद कर जाती हैं अगर आपने उसका सत्य संधान साधना सीख लिया तो।

विश्व में कई सारे यांत्रिक उपकरण ऐसे हैं कि जिसकी धुन पर या ध्वनि पर आप ध्यानस्थ हो सकते हो। मेरे अनुभव के आधार पर तो पूरा यंत्र विज्ञान ध्वनि पर खड़ा है। उसकी सम्यक ध्वनि के लय का टूटना यंत्र में किसी खराबी की निशानी है और सम्यक ध्वनि के अनुसार

चलना यह यंत्र के दुरस्त होने का सबूत है।

ध्यान जब एक बार आपकी खोज बन जाएगा तो फिर आप हर चीज में, हर ध्वनि में, हर ताल में, हर नाद में, हर लय में, हर संगीत में ध्यान ढूंढने लगेंगे। और चीजों से आपको मदद भी मिलने लगेगी। जरूरी है ध्यान को ढूंढने के लिए चित्त और दृष्टि को खुला रखना। एक बार ध्यान विषयक दृष्टि प्राप्त कर लेने से आप स्थूल में से भी सूक्ष्म को ढूंढ लेंगे। और दृष्टि तथा प्यास के अभाव में सामने पड़ी हुई सिद्धियाँ भी मदद नहीं कर पाएंगी।

मैं आपको जिस ध्यान विधि की ओर ले जाना चाहती हूँ वह है घटिका यंत्र ध्यान।

घड़ी मनुष्य को समय का बोध कराने के लिए खोजी गई है। क्या आपको नहीं लगता है कि वह समय समय पर आपके ध्यान को केन्द्रित करती है विविध जिम्मेदारियाँ, काम, योजनाएं एवं व्यवस्थाओं के लिए!

वैसे तो समय एक अस्खलित, अदृश्य प्रवाह है। वह कभी रुकता नहीं, उसका कोई रूप नहीं कि लोग उसे देख सकें कि पकड़ पाएं। उसके पास एक अपनी गति है। वह हमारे कहने से धीरे भी नहीं चलता, शीघ्र भी नहीं। उसके पास केवल बहते रहने की क्षमता है। रुकने की या वापस लौटने की नहीं।

मनुष्य की भिन्न भिन्न मनःस्थितियों के कारण उसे समय मंद चल रहा है अथवा जल्दी निकल गया ऐसा अहसास होता है यह बात अलग है। परंतु इस अहसास के लिए समय जिम्मेदार नहीं है। आपकी मनःस्थिति ही जिम्मेदार है। सुख के दिन जल्दी कट जाते हैं और दुःख में लंबे लगते हैं। ऐसा क्यों? क्योंकि सुख दुःख में स्थिरता का अभाव, साक्षी भाव का अभाव, स्वीकार भाव का अभाव, सुख दुःख को पचाने की क्षमता का अभाव।

समय तो सर्वसाक्षी और निःपक्षपाती है। आज तक उसने किसी का पक्ष न लिया है न लेगा। मनुष्य अपने अपने पुरुषार्थ के अनुसार सफलता और निष्फलताओं को अच्छा समय, बुरा समय, मध्यम समय जैसे नाम दे देता है। वास्तव में वे सब परिस्थितियाँ होती हैं जो बदलती रहती हैं। परंतु मनुष्य समय शब्द का उपयोग बहुत विशाल और विविध अर्थ में करने लगा।

मनुष्य ने समय को अपनी व्यवस्था के अनुसार बाँटा और गिनती भी की। वास्तव में मनुष्य बच्चा, बूढ़ा और जवान होता रहता है। समय तो किसी भी की ओर ध्यान दिए बिना चलता रहता है। उसका चक्र कभी थमता नहीं, परंतु मनुष्य अपनी व्यवस्था और आश्वासन के लिए हाथ में से निकल गए हुए जीवन को अतीत या भूतकाल, जिसकी प्रतीक्षा है और जहाँ योजनाएं पूरी होने की संभावनाएं हैं। जिसके आधार पर योजनाएं बनाई हैं उसे भविष्य काल और जिन क्षणों को भुगत रहे हैं उसे वर्तमान कहते हैं।

जोड़ने और तोड़ने के स्वभाव के कारण मनुष्य ने अपनी सुविधा के लिए समय के भी कल्पना के आधार पर टुकड़े कर लिए और फिर समय को जोड़ा भी। जैसे सैकण्ड, मिनट, घंटे, दिन, महीने, साल, सदी और युग।

दिन और रात के चक्र में से नींद, आराम, भोजन और अन्य दैनिक कार्य करने के लिए तथा खुद को ही नियम में बांधने के लिए उसने घड़ी की खोज कर ली। परंतु फिर भी वह अनुशासित नहीं हो पाया। वह अपनी ही खोज के विपरीत करता रहता है। कोई समय के पीछे पड़ा है, कोई समय से पलायन कर रहा है, कोई समय से विपरीत चल रहा है तो कोई समय से आगे भागने की कोशिश कर रहा है। कुछ समझदार लोग कर्तव्य बोध के साथ समय की ज्यादा चिंता किए बिना सजगता से पुरुषार्थ करते रहते हैं।

मनुष्य ने विज्ञान और तकनीकी विकास में कई विक्रम स्थापित किए हैं। परंतु वह समय के साथ कुछ नहीं कर पाया। मनुष्य आज तक एक ही दिशा में गति करने वाली सूई वाली घड़ी ढूंढ पाया। सैंकड़ों सैंकड़ों प्रकार की घड़ियाँ बनती हैं, रेत से लेकर सोने चांदी हीरे मोतियों की घड़ी बनी परंतु हर घड़ी की सूई बाएं से दाएं ओर ही मुड़ती है। आज तक कोई घड़ी की सूई दाएं से बाईं ओर मुड़ती नहीं पाई गई। सच्चा समय दिखाने वाली घड़ी न कभी रुकती है, न उसकी सूई विपरीत दिशाओं में घूम सकती है। क्यों? क्योंकि वह समय चक्र का दर्शन कराती है। विश्व का कोई भी विज्ञान सनातन सत्य से विपरीत नहीं जा सकता। विज्ञान का काम ही है सत्य की खोज करना। ज्ञान का काम भी सत्य की खोज करना है। ब्रह्मांड के करोड़ों करोड़ों सत्यों को एक के बाद एक करके मनुष्य धीरे धीरे ढूंढ रहा है। कुदरत के रहस्य को पा रहा है। सत्य और कुदरत से विपरीत जाकर दिया हुआ कोई सिद्धांत एक वैज्ञानिक सत्य नहीं बन सकता। कुछ अज्ञानियों ने मिलकर स्वीकार कर लिया हुआ असत्य एक धर्म संगठन संप्रदाय या पार्टी बन सकता है परंतु सत्य नहीं।

सत्रहवीं सदी में इटली के ब्रूनो ने अरस्तु के सिद्धांत को जड़ता से पकड़े रहने वाले रोमन कैथैलिकों के सामने घोषणा की थी कि एक विश्व नहीं अनेक विश्व हैं तथा सूर्य अचल है और पृथ्वी सूर्य के इर्द गिर्द घूम रही है। इस सत्य को घोषित करने के लिए रोमन कैथैलिक धार्मिक संगठन ने उसको ज़िंदा जला दिया था। फिर भी सत्य नहीं बदला। इस सत्य को बाद में भी स्वीकार तो करना ही पड़ा।

हो सकता है कि कोई कल्पना या तर्क के बल से उल्टी गति करने वाली सुईयों की घड़ी भी खोज ले। परंतु इससे समय का प्रवाह नहीं

बदल सकता। अब प्रश्न यह उठता है कि बदलती परिस्थितियाँ जिसे मनुष्य भले और बुरे समय का नाम देता है उसके पार जाने का उपाय है ?

मैं कहती हूँ कि हाँ, समयातीत होने का मार्ग भी है। और वह है ध्यान। ध्यान में मनुष्य का तदात्म्य सिर्फ चैतन्य के साथ ही रहता है और वह शुद्ध चैतन्य का बोध ही परमात्मा का बोध है। हमारे वेद उस चैतन्य को समयातीत अथवा कालातीत कहते हैं।

पूरे विश्व में प्रेम और ध्यान दो ही अवस्था ऐसी हैं कि जहाँ समय का बोध नहीं रहता। मनुष्य की सारी चिंताएं गिर जाती हैं उन क्षणों में। वहाँ भूत भविष्य मिट जाता है। योजनाएं अदृश्य हो जाती हैं। सिर्फ वर्तमान बचता है।

जब योजनाओं की गैर मौजूदगी होती है और अतीत की स्मृतियाँ गिर जाती हैं तब भूत और भविष्य मिट जाता है। भूत और भविष्य का मिटना ही मुक्ति है।

ध्यान की क्षणों में न कोई अतीत रहता है न भविष्य। ध्यानमगनावस्था में वर्तमान का बोध करने वाला भी ध्यानस्थ होता है। वहाँ केवल आनंद और शांति की मौजूदगी रहती है। ऐसी क्षणें ब्रह्मत्व की क्षणें हैं। ऐसी क्षणों में मन अदृश्य हो जाता है। जब कोई इच्छाएं एवं योजनाएं पैदा करने वाला नहीं बचता, एवं मस्तिष्क होने पर भी बुद्धि और स्मृति के पार की अवस्था में प्रवेश होने के कारण अतीत का स्मरण करने वाला भी कोई नहीं रहता। वहाँ केवल आपके शारीरिक ढाँचे के भीतर और बाहर कालातीत चेतना बह रही होती है। जिसे मृत्यु, काल, समय कभी नष्ट नहीं कर पाया।

प्रिय साधको!

अगर आप मेरी बात समझ पाएंगे तो ध्यान के लिए किसी भी प्रकार का प्रमाद या विलंभ नहीं कर पाएंगे। अगर नहीं भी समझ पाए हैं तो ध्यान के द्वारा सब समझ में आ जाएगा।

ध्यान में प्रवेश करने के अनेक अनेक रास्ते हैं। उनमें से नृत्य, लय, ताल, ध्वनि, शब्द और स्वरों के आधार पर चल रही ध्यान विधियों के इस विभाग में मैंने मेरे अनुभव के आधार पर एक छोटी सी घड़ी की टिक टिक की मदद का अनुभव करके उसे एक ध्यान विधि के रूप में इस ग्रंथ में समावेश कर लिया है। ताकि साधारण जन भी इस विधि का उपयोग कर सके।

अब विधि को ज़रा ध्यान से समझ लें। दीवाल घड़ी एक ऐसा उपकरण है कि साधारण मनुष्य के घर में भी उपलब्ध होता है। रात के वक्त अथवा दिन में भी एक शांत कमरे में कमरा बंद करके घड़ी की टिक टिक आवाज में चित्त को पिरोने की कोशिश करें।

मनुष्य का मन इतना चंचल है कि वह दो टिक टिक के बीच में भी दूर दूर भाग जाएगा। आपको उसके साथ खींच जाएगा। घड़ी तो साक्षी है उसकी टिक टिक तो होती रहेगी। परंतु आपने उसकी ध्वनि के साथ अपनी ध्वनि के मिलाने की कोशिश नहीं की तो वह ध्यान नहीं बन पाएगा। उसकी ध्वनि से आपको कोई मदद नहीं मिल पाएगी।

एक सेकंड समय का बहुत छोटा परिमाण है। प्रत्येक सेकंड में 'टिक' ध्वनि उत्पन्न होती है। अगर दो सेकंडों के बीच में भी आपका अवधान स्थिर नहीं होता है तो जरा सोचो कि आपका मन कितना बावरा है! कितना अशांत है! कितना अस्वस्थ है! कितना चंचल है!

और वह अशांत मन आपको एक सेकंड में कहाँ कहाँ भटकाता है! आपकी कितनी ऊर्जा व्यय करता है भाग भाग कर!

जब मन किसी विषय की ओर भागेगा तब आपको भी उस विषय पर सोचने के लिए विवश करेगा। यथासंभव शरीर भी मन के साथ मज़ा ले लेने के मूड में होता है। तब विशेष ऊर्जा व्यय होती है।

फिर भी क्रिया विचार और चिंता का परिणाम शांतिप्रद और आनंद प्रद नहीं होता तब आदमी टूटता है। मन के साथ भागने के बाद फिर पछताता है। वह टूट टूट कर जब अंत में बिखर कर खत्म हो जाता है तब लोग उस स्थिति को वृद्धावस्था और मृत्यु कहते हैं।

प्यारे साधको!

ये सब इसलिए बताया कि घड़ी की ध्वनि पर ध्यान करते करते आप सजग रहो। दो टिक टिक के बीच में कहीं भागो नहीं। घड़ी की लयबद्ध ध्वनि टिक टिक के साथ जुड़ जाओ। आपकी समग्र चेतना को उस ध्वनि के प्रति प्रवाहित करो। ध्वनि रूप बन जाओ।

धीरे धीरे घड़ी की ओर आपकी लय एक हो जाएगी। चित्त स्थिर हो जाएगा। फिर तो ध्वनि गौण बन जाएगी। चेतना केन्द्र में स्थिर होती जाएगी और स्थिर होते ही भीतर से शांति का अनुभव होने लगेगा। वही अदृष्ट से मुलाकात के क्षण हैं।

विधि बहुत आसान है, इसमें कुछ विशेष करना ही नहीं है। केवल घड़ी के लय और ध्वनि के साथ तल्लीन होना है। परंतु मैंने देखा है ऐसे लोगों को कि घड़ी की टिक टिक उन्हें विक्षिप्त कर देती है। जो ध्वनि आपको ध्यान में ले जा सकती है वही ध्वनि ध्यान से दूर जाने वाले को कभी कभी सोने नहीं देती।

ऐसे अस्वस्थ लोग रात को उठकर घड़ी को दीवार से उतारकर दूसरे कमरे में रख देते हैं। कुछ लोग लोभी और क्रोधी किसिम के होते

हैं। वास्तव में ऐसे लोग घड़ी को फोड़ देना चाहते हैं। परंतु नुकसान भी सहन नहीं कर सकते हैं। वे अपनी भीतर की अशांति के कारण सो नहीं पाते हैं। और गुनाह थोप देते हैं बेचारी घड़ी पर।

कुछ लोग घड़ी को फोड़कर गुस्सा भी उतार देते हैं। मैं कहूँगी कि ऐसे लोगों को तत्काल ध्यान की जरूरत है। ऐसे लोगों को विशेष रूप से इस ध्यान विधि में उतरना चाहिए।

अगर आप भीतर से शांत हैं तो बाहर का बवंडर भी आपको विचलित नहीं कर पाएगा। परंतु भीतर से अगर आप क्रुद्ध हैं तो छोटी सी घड़ी भी आपको शत्रु लगेगी। अगर आप ऐसी मनोदशा में जी रहे हैं, आपकी नकारात्मकता बढ़ रही है। छोटे छोटे विक्षेप आपको बड़े लगते हैं और आप सो नहीं सकते तो केवल ध्यान ही आपका इलाज है।

ऐसी स्थिति में आपको आपकी ही मदद करनी पड़ेगी। जल्दी ही ध्यान में उतरना पड़ेगा। ध्यान ही आपका जीवन है ऐसा समझकर आज से ही ध्यान का प्रारंभ कर दो।

अगर ऐसा नहीं भी है तो भी रात के वक्त अगर आप चाहते हैं तो घड़ी की टिक टिक पर चित्त को स्थिर करके आप ध्यानस्थ हो सकते हो। थोड़ी देर के लिए चले जाओ कालातीत अवस्था में। आपके घर में एक सहज प्राप्य ध्वनियंत्र है तो वह भी परमात्मा में स्थिर होने का एक साधन बन सकता है। बात आपके स्थिर होने की है। महत्वपूर्ण है आपका निर्विकल्प होना। साधन भले कोई भी हो।

धरणा - ७२

लयबद्ध सूक्ष्मध्वनि प्रवेशभाव ध्यान

प्रिय साधको!

संगीत की तरह कभी कभी कुछ अन्य ध्वनियाँ भी स्वाभाविक रूप से इस तरह से घटित होती हैं कि जिनमें लयबद्धता होती है। जैसे कि कोई झूला झूल रहा है तो उसकी एक लयबद्ध आवाज़ आती है। जैसे घड़ी की टिक टिक। वैसे ही पानी की बूंदों का टपकना।

अगर आपके पास एक ध्यानी का हृदय है तो ऐसी असंख्य चीज़ों और घटनाओं में से आप एक लय को पकड़कर उसकी आवाज़ को ध्यान का विषय बना सकते हो। मेरी बताई हुई इन छोटी छोटी विधियों को शास्त्र में ढूँढने बैठेंगे तो नहीं मिलेंगी। शास्त्र की एक सीमा होती है, अनुभव की कोई सीमा नहीं होती। जो कुछ भी मनुष्य के अनुभव में आया है उन सारी बातों का शास्त्र नहीं बन सकता। पहले अनुभव होता है, बाद में शास्त्र बनता है। और हर आदमी शास्त्र रच भी नहीं सकता। जिससे अनुभव के स्तर पर घटी हुई बहुत सारी बातें ऐसी रह जाती हैं जो शास्त्र नहीं बन पाती।

शास्त्र तो सिर्फ तभी बनता है जब कुछ खास बातें ऐसे लोगों के अनुभव में आएँ कि जो उसके सत्य का अनुभव लेकर उसे शास्त्रीय भाषा में उतार सके अथवा अपने जाने हुए सत्यों को शास्त्रों में स्थान दिलाने के लिए सक्षम हो।

मैं कहती हूँ कि जीवन शास्त्रों को पकड़कर नहीं चल सकता। शास्त्रों से सिर्फ प्रेरणा ली जाती है। सिर्फ मान्यता के आधार पर स्वीकृत शास्त्र मनुष्य जीवन में कोई क्रांति नहीं ला सकता। शास्त्रीय सत्य मनुष्य का अनुभवित सत्य बने तभी शास्त्र सार्थक बनते हैं। अथवा कोई बात शास्त्र में भले न लिखी हो, परंतु किसी नूतन अनुभव में से आप गुजर गए तो उस अनुभव की अभिव्यक्ति भी एक छोटा शास्त्र है।

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि ध्यान शास्त्रों में लिखी हुई विधियों से अनलिखी और अनजानी विधियाँ ज्यादा हैं। शास्त्रों में तो उतनी ही विधियाँ समाविष्ट हुई हैं कि जिसे कोई देव, ऋषि या धर्म का स्पर्श प्राप्त हुआ। मनुष्य ने आज तक कभी सोची न हो कभी छुई न हो ऐसी अनेक बातें ध्यान का माध्यम बन सकती हैं। शायद इसी वजह से इस ध्यान शास्त्र को एक गूढ़ शास्त्र, गुप्त शास्त्र, गहन शास्त्र अथवा रहस्यमय शास्त्र कहा गया हो।

इसका अर्थ में सिर्फ इतना ही करती हूँ कि ध्यान को मनुष्य किसी भी बाहरी माध्यम के आधार से भीतर के गहनतम जगत में उतरकर ही जान सकता है। वह इसलिए गुप्त है कि भिन्न भिन्न माध्यमों के द्वारा जितने अंतरमन की गहराईयों में उतरते जाएंगे उतना ही परम सत्य अथवा प्रत्यक्ष ज्ञान आपके सामने प्रगट होता जाएगा। शास्त्र केवल एक धारणा और शब्द देते हैं। वह सत्य की व्याख्या करता है, सत्य के लिए प्रेरित करता है परंतु सत्य दे नहीं सकता। सत्य का अनुभव तो मनुष्य अपने भीतर उतरकर ही कर सकता है। इसीलिए ध्यान शास्त्र को एक गुप्त शास्त्र कहा है।

ये सब कब होगा? जब ध्यान आपके लिए एक रस का विषय और एक खोज का विषय बन जाए तब। जब आपके भीतर एक खोजी सक्रिय बन जाएगा तब हर चीज में से वह ध्यान ढूँढने लगेगा। वह ध्यानदृष्टा बन जाएगा। ऐसे ध्यानदृष्टा की सारी चेतना और इंद्रियों की

शक्तियाँ हमेशा एक ही खोज में रहेंगी कि – वह कहाँ कहाँ स्थिर हो सकती हैं ? कहाँ कहाँ ध्यान में उतरा जा सकता है ? और एक बार जब आप ध्यानदृष्टा बन गए तब आपके सामने हजार हजार विषय ऐसे आ जाएंगे कि जिसपर आप ध्यान कर सकते हो। ये मेरे अनुभव में से आया हुआ एक परम सत्य है।

एक बार ध्यान दृष्टा बन जाने के बाद छोटी छोटी चीजों को ध्यान का माध्यम कैसे बना लेना वह कला आपके भीतर स्वतः विकसित होती जाएगी।

जलबूंद की 'टपक' 'टपक' ध्वनि एक तरह से मनोविक्षेप खड़ा करती है। यह तकलीफ अकसर कई घरों में होती है। हर किसी के घर में एकाद नल तो टपकता ही रहता है। रात का सन्नाटा या दोपहर की शांति में यह 'टपक' 'टपक' ध्वनि स्पष्ट सुनाई देती है। ज्यादा संवेदनशील मनुष्य को विशेष विक्षेप होता है। मैं कहती हूँ कि संवेदनशील होना यह अच्छी बात है। संवेदनाशून्य मनुष्य पृथ्वी को मिला एक शाप है। संवेदना शून्य मनुष्य धरती का भार है। ऐसे लोग पृथ्वी पर आकर सबसे कुछ न कुछ लेते रहते हैं। अपना कूड़ा करकट धरती पर फैकते रहते हैं। परंतु किसी को कुछ सुंदर या आनंददायक नहीं दे सकते। ऐसे लोग विश्व को विशेष सुंदर नहीं बना सकते।

अकसर मतलब परस्त लोग अ-संवेदनशील होते हैं। ऐसे लोग ध्यान को कभी भी उपलब्ध नहीं हो सकते।

संवेदनशील होना ये एक वरदान है। परंतु अतिसंवेदनशील बनना अथवा संवेदनाओं का सजगता के साथ सम्यक संतुलन न होना ये कभी कभी घातक बन जाता है।

ध्यान अति संवेदनशीलता का उचित अनुनियमन करके उसे सम्यक बनाता है। ध्यान भावनाओं को प्रबल और प्रवाहित होने देता है। उस प्रवाह में मनुष्य तैर भले जाए परंतु डूब न मरे इसलिए जाग्रत भी रखता है।

कुछ कठोर हृदय के लोग दूसरों की भावनाओं को नहीं समझ सकते और कुछ ज्यादा चालाक लोग तो समझने के बावजूद भी उन्हें नजरअंदाज कर देते हैं। कुछ हृदयहीन लोग दूसरों की संवेदना का मज़ाक भी उड़ाते हैं, और भावनाओं का लाभ भी उठाते जाते हैं। ऐसी प्रवृत्ति को मैं संवेदनात्मक हिंसा कहूँगी। ऐसी प्रवृत्ति को शास्त्र पाप कहते हैं।

हम बात कर रहे थे जलबूंद की टपक टपक ध्वनि पर ध्यान करने की। आपको प्रश्न हो सकता है कि हमको तो ऐसी ध्वनियाँ विक्षेप करती हैं और आप उसपर ध्यान करने के लिए कह रहे हैं ? – हाँ! मैं उस ध्वनि पर ध्यान करने को कह रही हूँ।

इस जगत की बहुत सारी बातें सापेक्षवाद पर खड़ी हैं। उसका मूल कारण है मन और प्रकृति। अगर मन का अस्तित्व नहीं होता तो सापेक्षवाद के सिद्धांत की इतनी महिमा नहीं होती।

मन का स्वभाव है कि जो उसे अनुकूल है उसको वह पसंद करता है और जो प्रतिकूल है उसे नापसंद। मन के अनुसार जो चीज चलती है उसे वह अच्छा कहता है और उससे विपरीत जाती है उसे बुरा कहता है। वैसे तो शरीर पर भी सुख दुःख, अनुकूल-प्रतिकूल का प्रभाव पड़ता है। परंतु शरीर जड़ है। उसमें जब तक शक्ति होती है, क्षमता होती है तब तक वह बाहरी परिस्थितियों के साथ जल्दी ताल-मेल साध लेता है।

शरीर सहिष्णु बन सकता है। अत्याचार भी सहन कर लेता है। शोषित भी होता रहता है। वह निभाता जाता है। परंतु विरोध हमेशा मन करता है। मन का स्वभाव अति चंचल है। वह नया नया मांगता रहता है। परिस्थितियाँ बदलते ही मन बदल जाता है।

एक दिन ऐसा होता है कि एक मनुष्य को देखना भी अच्छा नहीं लगता है और परिस्थितियाँ बदलते ही एक क्षण ऐसा आ गया कि उसी मनुष्य से मन ने दोस्ती कर ली।

मन गणित चलाता रहता है। उसके गणित में जो कुछ भी बैठता है उसके संग मन चलता रहता है। मानव का मन अहंकार से पुष्ट होता रहता है। यह एक दूसरा कारण है मन के बार बार बदलने का।

अहंकार की वजह से स्वीकार और अस्वीकार की मानसिकता विकसित होती है। जहाँ अहंकार पुष्ट होता है उस माहौल का मनुष्य स्वीकार करने लगता है और जहाँ अहंकार को ठेस लगने लगती है उस माहौल का वह विरोध करने लगता है।

एक तीसरा भी कारण है मन के बदलते रहने का, मन हमेशा सुख के संग हो लेता है, दुःख से भागता है। सुख और दुःख की समानरूप से उपासना करना यह मन की क्षमता के बाहर की बात है। ऐसी उपासना केवल ज्ञानी और ध्यानी कर सकता है। मन तो वनवे पर चलता है। जीवन में कभी एक मार्गीय रस्ता नहीं होता, जीवन में सुख दुःख की दिशाएं बदलती रहती हैं। परंतु मन को सुख की दिशा अच्छी लगती है। दुःख की दिशा से वह मुंह मोड़ लेता है।

सापेक्षता के सिद्धांत का एक उदाहरण लें। आइन्सटाइन आपको कहेगा कि गर्मी में हवा अच्छी लगती है, वही हवा ठंडी में अच्छी नहीं लगती। क्या कारण है इसका ? एक व्यवहारिक स्तर पर देखा जाए, एक सामान्य दृष्टि से देखा जाए तो बात बिल्कुल सही है। गर्मी में जो पंखा आशीर्वाद बन जाता था वही पंखा सर्दियों में शत्रु बन जाता है। औसत मनुष्य सापेक्षता के सिद्धांत के साथ ही चलेंगे परंतु ध्यान सभी सिद्धांतों के

ऊपर है।

ध्यान किसीके सिद्धांतों से नहीं चलता, वह तो एक अनूठी अनुभूति है। सौ आदमी के बीच में महावीर खड़ा होगा और सापेक्षता की बात की जाती तो निन्यावे आइन्सटाईन के साथ होते परंतु महावीर कहेगा कि सर्दी हो या गर्मी मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। ऐसी स्थिति में महावीर को नासमझ लोग पागल ही कहेंगे परंतु महावीर के पास ध्यान और तप के कारण प्राप्त की हुई एक विशिष्ट भूमिका और क्षमता है। लोग सर्दियों में स्वेटर और कंबल ओढ़कर भी कांपते रहते हैं और महावीर दिगंबर अवस्था में ज़ोर की ठंडी में भी देहभाव से ऊपर उठकर मन की मांगों से मुक्त होकर साक्षी भाव से मस्ती से बैठे रहते हैं। यह क्या है ? यहाँ आप आइन्सटाईन को मानेंगे कि महावीर को !

वेशक ! जहाँ ज्ञानावस्था और ध्यान की बात चल रही है वहाँ महावीर ही मदद कर पाएंगे। सुखवाद और भोगवाद में भले और कोई मदद करे।

ज्यादातर सिद्धांत औसत मनुष्य को ध्यान में रखकर दिए गए हैं। परंतु ध्यान का जगत आपको साधारण जगत से ऊपर उठा देता है। वहाँ बने बनाए शास्त्रीय सिद्धांत फीके पड़ जाते हैं। और अनुभव के सत्य का बल बढ़ जाता है। ध्यान के द्वारा मैं एक आध्यात्मिक रूप से सशक्त मानव समुदाय का निर्माण करना चाहती हूँ। इसलिए शांति में विक्षेप करने वाली कुछ विधियों को शांति प्राप्ति का माध्यम बनाने का विधान बता रही हूँ। एक बार जब ऐसी कला आपने सीख ली, एक बार जब इस विद्या को आपने आत्मसात कर लिया तब विपरीत परिस्थितियाँ भी आपको विचलित नहीं कर पाएंगी। फिर वहाँ सापेक्ष नहीं परंतु सर्वअपेक्ष अर्थात अस्तित्व की मर्जी के अनुसार जो कुछ भी प्राप्त हुआ उसका सहज स्वीकार हो जाएगा। यही बुद्धत्व है। यही साक्षी भाव की चरम सीमा है।

प्रिय साधको !

अब इस छोटी सी विधि को समझ लो। सामान्य रूप से पानी का नल ढीला पड़ जाने से जब जरूरत नहीं होती है तब भी टपकता रहता है। यह टपक टपक सोते वक्त विक्षेप खड़ा करती है। परंतु जब इसे भी आप ध्यान बनाने की क्षमता हासिल कर लेंगे तब आपको विक्षेप से भी सहयोग प्राप्त होने लगेगा।

जब तक बाहर की आवाज़ या चहल पहल है तब तक तो यह ध्वनि नहीं सुनाई देगी। बड़ी आवाज़ों में छोटी ध्वनियाँ हमेशा दबती रहती हैं। परंतु शांति और सन्नाटे के माहौल में वह ध्वनि लयबद्धता से सुनाई देती है। वह एक सहज लय है। वहाँ कोई संगीत शास्त्र के जानकार ने लय बिठाया नहीं है। फिर भी घंटों तक वह लय टूटती नहीं है।

जब आपके साथ कभी ऐसा हो कि वह लय आपको विक्षिप्त करने लगे तब उसको ध्यान बना लो। बार बार उसकी उपेक्षा करने के स्थान पर उसकी प्रतीक्षा करो। उसकी ओर मुड़ जाओ, पूरा पूरा लक्ष्य दे दो उस ध्वनि की ओर। वह ध्वनि धीरे धीरे आपके भीतर के लय के साथ घुल मिल जाएगी। धीरे धीरे ध्वनि गौण बन जाएगी और दो बूंदों के टपकने के बीच की शांति घनीभूत होती जाएगी। आप पिरोते जाओ आपके चित्त को उस शांति में। मैं कहती हूँ कि शांति की ताकत शब्द से विशेष है, शांति घनीभूत होते ही ध्वनि नेपथ्य में चली जाएगी। शांति केन्द्र में रहेगी। और जैसे ही आपका पूर्ण रूप से शांति में प्रवेश हो जाएगा तब एक प्रसन्नता, एक गहनता और समष्टि के साथ एक समग्रता का अनुभव होगा।

अगर आपमें किसी भी ऐसी ध्वनियों पर केन्द्रित होने की क्षमता है तो एक छोटी सी ध्वनि आपके भीतर एक हकारात्मक शक्ति का विस्फोट कर सकती है। और आप साक्षी भाव में प्रवेश कर सकते हो। फिर तो यह आपका अभ्यास बन जाएगा। और ध्यान के द्वारा आप प्रतिकूल परिस्थितियों के साथ भी सहजता से अनुकूलन साध लेंगे। जब ऐसा होगा तब आप बुद्ध या महावीर से कम नहीं रहेंगे।

धारणा - ७३

अध्ययन ध्यान

प्रिय साधको !

वाचन क्रिया और अध्ययन में फ़र्क है। वाचन है केवल शब्दों की बाहरी यात्रा करना और अध्ययन है विषय में डूब जाना। विषय के सत्य को आत्मसात कर लेना, विषय के तत्व को समझना, विषय के अर्थ को पा लेना, सार को पी जाना और पचा लेना।

अध्ययन है - शास्त्र का आपके रक्त में उतर जाना, उसके रहस्य को प्राप्त कर लेना और तद्रूप बन जाना।

ज्यादातर लोग वाचन क्रिया से गुजरते हैं। वाचन अगर अध्ययन बन जाए तब वह ध्यान की कक्षा प्राप्त करता है। अध्ययन कोई क्रिया नहीं है, वह तो एक साधना है।

वाचन फालतू समय में हो सकता है। अध्ययन सहेतुक होता है, वह इरादे के साथ होता है। गहन वाचन जब जीवन का अंग जैसा बन जाता है तब वह अध्ययन की अवस्था प्राप्त करता है। वाचन से आंखें थकती हैं, मन ऊब सकता है, परंतु अध्ययन की गहनता में डूबते ही मन अदृश्य हो जाता है। उसकी सारी गतिविधियाँ रुक जाती हैं। मति का चंचुपात बंद हो जाता है और कुछ क्षणों के लिए अहंकार का भी विस्मरण हो जाता है। ऐसा अध्ययन ध्यान बन जाता है।

अध्ययन मनुष्य को बदल देता है। एक साधारण मनुष्य दुनियाँ में अपना सिक्का जमा देने के बाद भी साधारण ही रह जाता है। कितनी भी दौलत और शोहरत कमाने के बाद भी साधारण ही रह जाता है जबकि अध्ययनशील मनुष्य भले अनिकेत हो, अकिंचन हो फिर भी असाधारण होता है।

प्यारे साधको!

अध्ययन आपको असाधारण बना सकता है। आपकी आंतरिक क्षमताओं को विकसित कर सकता है। आपको बदल सकता है। इसलिए मैं आपको अध्ययन एक ध्यान के रूप में दे रही हूँ। मैं चाहती हूँ कि आपका वाचन अध्ययन की कक्षा प्राप्त करे और आपका अध्ययन आपको ध्यान मग्न बना दे।

एक बार मेरा एक पत्रकार के घर जाना हुआ। वह एक भक्त हृदय इंसान है। मैंने उसको पूछा, आपको पढ़ने का शौक है? उसने कहा बहुत पढ़ता हूँ। मैंने पूछा, क्या पढ़ते हो। उसने कहा सुबह में सारे न्यूज पेपर आ जाते हैं – गुजरात, संदेश, लोकसत्ता, जनसत्ता, दिव्यभास्कर... ये सब पढ़ता हूँ। कभी कभी अभियान और चित्रलेखा जैसे मासिक भी पढ़ता हूँ।

ये बात किसी एक व्यक्ति की नहीं है। समाज के बहुत सारे लोग यहीं पर अटके हैं। मनुष्य का वाचन शौक न्यूजपेपर, और सप्ताहिक, पखवाड़िक और मासिक पत्र-पत्रिकाओं पर अटक जाता है और एक ही प्रकार की बातें विविध रूप में बार बार सामने आती हैं। यहाँ मनुष्य विशेष रूप से विकसित नहीं हो सकता।

लोगों को समाचार पत्र पढ़ने का व्यसन हो जाता है, चाय की तरह। लोग कभी ऊबते भी नहीं हैं उनसे। अखबारों के समाचारों में केवल पात्र बदलते हैं, घटनाएं नहीं। एक ही प्रकार की घिसी पिटी बातें छपती रहती हैं। उन्हें पढ़कर ध्यानावस्था कैसे प्राप्त हो पाएगी!

अखबारों में कोई विशेष वाचन सामग्री नहीं मिलती। पच्चीस साल पहले जो अखबार किसी भी संत को मन भर के बदनाम कर देता है, सत्य को जाने समझे बिना कुछ भी छाप देता है, मसालेदार खबरें बनाने के लिए। वही अखबार उस संत के मर जाने के बाद उसकी फिलॉसोफी संत के रंगीन फोटो के साथ पूर्तियों में छापते हैं। कहाँ से अपेक्षा करें मूल्य, निष्ठा और धर्म-ईमान की।

नीतियाँ भले बदलती रहें, नीति बदलने के लिए ही बनती हैं। परिस्थितियों के अनुसार नितियों को बदलना अनिवार्य हो जाता है। नीति की नियति ही है बदलना। फिर भी अनीति से तो नीति अच्छी होती है। परंतु आज के अखबारों में नीति मूल्यता जैसा भी कुछ नजर नहीं आता है। धन के लिए आदमी ईमान बेच रहा है। उसे संत हो या शैतान किसी से भी मतलब नहीं, उसे केवल धन से ही मतलब होता है।

राजनीति, शेयर बाजार, डकैती, हत्या, बलात्कार, घोटाले और खास पत्रों पर खूबसूरत लड़कियों के अर्धनग्न फोटो; ये अखबारों का डीज़ाइन बन गया है। साप्ताहिक पूर्तियों में कभी कभी अच्छे लेखक का चिंतन मिल जाता है। लेकिन वह आटे में नमक के बराबर है। इस माहौल में कौन छापेगा ध्यान शिबिर की बातों को? कौन समझेगा इस परम सत्य को?

एक बार राजकोट में मेरा प्रवचन था, वहाँ एक पत्रकार मुझे मिलने के लिए आए। बात में से बात निकली और मैंने कहा कि अखबार तो समाज के लिए जाग्रत प्रहरी का काम करता है। सुबह सुबह में आदमी सबसे पहले हाथ में अखबार थामता है, आपको नहीं लगता है कि कुछ चिंतन मनन पूर्ण बातें एवं बोध दायक घटनाएं विशेष छपनी चाहिए?

समाज में अच्छे काम ज्यादा हो रहे हैं, दुनियाँ अच्छाईयों पर खड़ी है। अच्छी घटनाओं की रिपोर्ट को बड़े बड़े अक्षरों में उजागर करना चाहिए ताकि समाज को सत्कर्मों के लिए प्रेरणा मिलती रहे। आप लोग नकारात्मक बातों से ही पन्ने भरते जाते हो। दुनियाँभर की बुराई छापने से पाठक का मानस विकसित नहीं होगा, कुथलीखोर हो जाएगा।

तब उसने मुझे कहा कि कुत्ता आदमी को काटे उसे हम न्यूज नहीं कहते हैं, जब आदमी कुत्ते को काटे उसे कहते हैं न्यूज। उससे ज्यादा संवाद करना मुझे निरर्थक लगा। नकारात्मक मानस के साथ संवाद नहीं हो सकता, विवाद छिड़ जाता है। ऐसी स्थिति में मौन हो जाना ही समझदारी है।

परंतु आज भी मुझे विचार आता है कि क्या पत्रकारित्व इस दुनियाँ को इतने गिरे हुए स्तर पर ले जाना चाहता है कि जहाँ इन्सान इन्सानियत को भूलकर कुत्ते को काट ले!

भलाई बुराई के मुंह लगे, यह तो अधःपतित समाज की निशानी है। पत्रकारित्व की यह स्ट्रेटेजी कोई सीखने या समझने जैसी नहीं है। उसके अनुसार तो छोटे आदमी का या भले आदमी का तभी किसी अखबार में नाम छपेगा जब वह डाका डाले, लूट करे, रेप करे या चारसोबीसी करे।

खैर! आध्यात्मिक मनुष्य तो सब प्रकार की ऐषणाओं से पर होता है, निंदा स्तुति में समभाव रखता है। उसे अखबार सर पर चढ़ा दे या गिरा दे कोई फर्क नहीं पड़ता। जिसको कागज़ काला ही करना है, उसको क्या?

परंतु मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि अखबार के ज़रिए अध्ययन की सामग्री प्राप्त होनी चाहिए। ताकि मनुष्य सांप्रत समस्याओं से अवगत भी होता रहे, राष्ट्रीय घटनाओं से वाकेफ भी। फिर भी कुछ ऐसा प्राप्त कर ले कि वह वाचन उसके लिए ध्यान बन जाए, आत्मसुख और आत्मशांति का माध्यम बन जाए।

आज के मनुष्य ने वाचन संदर्भ में समझ गंवा दी है। अमरीका में प्रतिमास 'प्लेबोय' की दस लाख कॉपी बिकती है, उतनी बाइबल की नहीं बिकती।

भारत में जितनी 'स्टार डस्ट' की कॉपियाँ बिकती हैं उतनी गीता या ध्यान ग्रंथों को खरीदने में उत्सुक लोग नहीं हैं। क्यों? क्योंकि मनुष्य की यात्रा ही मन और इन्द्रियों तक की रही है। उसे क्षणिक सुख की खोज है, शाश्वत सुख की नहीं।

मेरी दृष्टि से आत्मबोध जगें ऐसे विषय का अध्ययन करना यह एक ध्यान है। लोगों का पढ़ना ऊपर ऊपर का होता है। मैं कहती हूँ कि किसी भी विषय को पढ़ते पढ़ते जब आप डूब जाओ उस विषय में तब वह ध्यान बन जाता है। साहित्य की भाषा में उसे साधारणीकरण की अवस्था कहते हैं।

अध्ययन ध्यान विधि मेरी कुछ प्रिय विधियों में से एक है। ध्यान शास्त्रों में इस विधि को ढूँढ़ने जाएंगे तो कहीं नहीं मिलेगी। यह मेरे अनुभव में से आई हुई एक विधि है। मुझे लगा कि साधक का अध्ययन ध्यान की कक्षा प्राप्त करे इसलिए इसका एक ध्यान विधि में समावेश कर देना चाहिए। अगर आप एक अध्ययन प्रेमी हैं तब ही मेरी बात को समझ पाएंगे।

गुजराती भाषा मेरी मातृभाषा होने के कारण मेरा लगाव उससे होना स्वाभाविक था। बचपन में गुजराती साहित्य पढ़ने का बड़ा शौक था। तब रमणलाल देसाई और मनुभाई पंचोली को पढ़ते पढ़ते कभी कभी चिंतन होते होते चित्त स्थिर हो जाता था। फिर यह मेरे लिए रस का विषय बन गया। फिर तो हरकिसन मेहता के कई उपन्यास और गुणवंत आचार्य की दरियाई सफर संबंधी किताबें पढ़ते पढ़ते मन कहीं अदृश्य हो जाता था। चंद्रकांत वक्षी को पढ़कर बुद्धिजगत प्रभावित होता था परंतु भीतर का तार शब्दब्रह्म से जुड़ जाता था अध्ययन के द्वारा।

फिर मेरे भीतर जो हो रहा था उसको मैंने स्पष्ट रूप से समझने का प्रयास किया। पुस्तक को छोड़कर आंखें बंद करके घंटों तक बैठने के बात मुझे प्रतीत होने लगा कि मेरा वाचन सिर्फ आंख या मस्तिष्क से नहीं हो रहा है। परंतु मैं समग्रतया उसमें उतर जाती हूँ। तब पहली बार मेरी समझ में आया कि यह एक सहज ध्यान विधि है।

परंतु मेरे हृदय का स्थाई भाव था धर्म और अध्यात्म। फिर तो मेरा चित्त प्रत्येक साहित्यकार में अध्यात्मरस को ढूँढ़ने लगा। हिन्दी के प्रेमचंद, अज्ञेय, निराला, महादेवी, सुमित्रानंदन पंत और मैथिलीशरण गुप्त पसंद आते थे परंतु कबीर, सूर, तुलसी, घनानंद, रहीम और रसखान को पढ़ते पढ़ते बात बिलकुल स्पष्ट हो गई।

उन्हें पढ़ते पढ़ते जो आसूँ बहने लगते थे, शरीर रोमांचित होने लगता था, फिर सर्जक और उसका सर्जन गौण बन जाता था और एक अलग विश्व में मेरा प्रवेश हो जाता था। उस अवस्था में बार बार खो जाने का मेरा प्रयास सफल रहा।

वह मेरा वाचन नहीं परंतु अध्ययन ध्यान था। साहित्य एक प्रकार से मुझमें शक्तिपात करता था। वह मेरे समाधि बिन्दुओं को सक्रिय कर देता था। मुझे अपार सृजन शक्ति से भर देता था। मुझे हकारात्मक विचार और कार्यों की शक्ति प्राप्त होती थी।

फिर तो उपनिषद्, योग और तंत्र साहित्य के माध्यम से मैं बार बार पहुंचती रही साहित्य समाधि में। पुराण साहित्य ने मुझे भक्ति ध्यान में डुबोए रखा। कुछ समय पहले रोबिन शर्मा की 'द मोंक सोल्ड हिस फ़ेरारी' ये मेरा अंतिम अध्ययन ध्यान था। उसके कुछ ही पन्ने पढ़ते पढ़ते ही मैं समझ गई कि भाषा और शब्दों से मैं बहुत ऊपर उठ गई हूँ। शब्दों के भीतर छिपा हुआ भाव और उसके पार का एक विश्व जिसके उपरति का विश्व कह सकते हैं। उसमें मेरा प्रवेश होने लगा था।

आज स्थिति ऐसी है कि पढ़ना कम और लिखना ज्यादा हो गया है। लेकिन मैं कहूँगी कि पढ़ना, लिखना, सुनना या बोलना चारों क्रिया अध्ययन बन सकती हैं; अगर आपमें सजगता है तो। और वह अध्ययन ध्यान भी बन जाता है।

आपको आश्चर्य हो सकता है कि क्या बोलना भी अध्ययन बन सकता है? मैं कहती हूँ, हाँ। जब आप शब्द ब्रह्म को समर्पित हो जाते हो और किसी ऊमदा हेतु के साथ बोलना प्रारंभ करते हो तब अगर आपकी चेतना किसी अज्ञात से जुड़ी हुई होती है तो बोलना भी अध्ययन का एक

भाग और अध्ययन ध्यान बन जाता है।

वहाँ आप और आप दोनों भिन्न होंगे। आपका गुरु आपके भीतर ही जाग जाएगा। देखने में एक ही स्वरूप लगेगा फिर भी भीतर दो प्रक्रियाएं घटित होंगी। एक बोध कराएगा और दूसरा बोध ग्रहण करेगा। ध्यानावस्था के सिवाय ऐसा संभव नहीं हो सकता। सिर्फ वैखरी वाणी बोलने वाले इस बात को नहीं समझ पाएंगे।

अध्ययन शब्द, उच्चार, ग्रंथ और अभिव्यक्ति के परे की घटना है। जिसका अनुभव केवल अध्ययनशील आत्मा ही कर सकती है। अध्ययन का नाता सीधा शास्त्र के सार और सत्य से है।

प्रिय साधको!

मेरा दूसरा भी एक अनुभव है। आपका अध्ययन जब आपका स्वभाव हो जाएगा और अध्ययन अहेतुक हो जाएगा तब वह आपकी ज्यादा मदद करने लगेगा।

प्यारे साधको!

मनन के साथ इस विधि को मत जोड़ना। चिंतन और मनन आपको अच्छी अच्छी बातें लिखने, बोलने और करने के लिए प्रेरित करते हैं। आपके अभिगम को बदलते हैं। आपकी सोच और काम करने के ढंग को सुंदर बना सकते हैं परंतु मैं जो बात कर रही हूँ वह बिलकुल भिन्न है चिंतन-मनन से।

मैंने अध्ययन के द्वारा मन के पार और चित्त के पार जाने की बात बताई है। उपनिषद्कार भी कहता है -

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता। मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि। वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मेमा प्रहासीः। अनेनाधीतेनाहोरात्रान्सन्दधाम्यृतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्। ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

मेरी वाणी मन में स्थिर हो और मन वाणी में। अर्थात् वाणी और वर्तन में साम्यता हो। हे स्वप्रकाश परमात्मा! आप मेरे समक्ष आविर्भूत होओ। हे वाणी और मन आप वेद को मेरी ओर लाईए। अर्थात् सत्य मय जीवन का साक्षात्कार करने में मेरा सहयाग करो। मेरा श्रवण किया हुआ ज्ञान मेरा पिरत्याग न करे। मेरे अध्ययन के द्वारा मैं रात और दिन को एक कर दूँ। अर्थात् मेरा आंतरिक अध्ययन अहर्निष चलता रहे। मैं सत्यभाषण करूँ सत्यनिश्चय करूँ और वही सत्य मेरी रक्षा करे। वह वक्ता की रक्षा करे अर्थात् प्रार्थना करने वाले की रक्षा करे। रक्षा करे। रक्षा करे। त्रिविध ताप की शांति हो ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

यह एक ऐसी अवस्था है कि जहाँ शब्द, शास्त्र और शास्ता सब छूट जाते हैं। सिर्फ ध्यान बचता है। और ऐसे ध्यान में से ही उपनिषद् की प्रार्थना प्रगट हुई है। ऐसी क्षणों में शास्त्राध्ययन करने वाला खो जाता है। बचती है केवल एक मूक भावदशा, थोड़ा रोमांच, आनंद, परितृप्ति, कभी कभी अश्रु। और गहन मौन के साथ निर्विचार अवस्था उतर आती है।

ऐसी दशा में पुस्तक को छोड़ना नहीं पड़ता है वह अपनेआप छूट जाता है। यहाँ पुस्तक माध्यम बनने के बाद भी घड़ी भर व्यर्थ हो जाता है। एक अड़चन लगता है। क्षणभर के लिए खुद का अस्तित्व भी समा जाता है शब्द ब्रह्म में, तो फिर पुस्तक को पकड़ेगा कौन?

मन खो गया तो मनन कौन करेगा? और चित्त खो गया तो चिंतन का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

अध्ययन ध्यान के प्रमुख दो पहलू हैं - पठन और लेखन। लिखते लिखते भी आप शब्दों के पार के जगत में पहुंच सकते हो। परंतु आपका लिखना और पढ़ना अहेतुक फिर भी समग्रतापूर्ण होना चाहिए।

लिखते लिखते भी कोई शब्द, कोई वाक्य, कोई चिंतन ऐसा उतर जाएगा कि आपका लिखना छूट जाएगा, आप चले जाएंगे निःशब्द के जगत में, आपको होगा कि वे शब्द आपके हैं ही नहीं।

आप महसूस करेंगे कि किसी बौद्धिक प्रयास या मन से आप ऐसा नहीं लिख सकते। आपकी लिखावट आपको एक भिन्न अनुभूति में ले जाएगी। वह अनुभूति ही ध्यान की अवस्था है। जो साधक अध्ययन के द्वारा अपने दिवस और रात को एक कर देता है ऐसे साधक को ही ऐसी अनुभूति प्राप्त होने की संभावना है।

वह अवस्था जब प्राप्त होती है तब लिखना-पढ़ना एक क्रिया नहीं परंतु साधना बनकर सार्थक हो जाता है। वह अवस्था साधना का फलित होना है। ऐसी अवस्था तक पहुंचा देने वाला लेखन करीब करीब वेद और शास्त्र बन जाते हैं जिसे भारत ने आगम नाम दे दिया है। क्योंकि जब किसी भी आयास प्रयास के बिना सत्य उतरने लगता है तब वह अपौरुषेय बन जाता है, दैवी बन जाता है और यह दिव्यता ध्यानावस्था में से उतरती है।

ज्यादातर लोगों का पढ़ना टाईम पर्सिंग के लिए होता है। जब नींद नहीं आती है तब कुछ लोग नींद की गोली की तरह ग्रंथ का उपयोग करते हैं। ऐसी मनोदशा में पढ़ा हुआ ग्रंथ उच्चतम कोटि का होने पर भी अध्ययन नहीं बन सकता। क्योंकि वहाँ चेतन को सुलाने के लिए आंखों को थकाने के लिए और मस्तिष्क को मूर्छा में ले जाने के लिए उसका उपयोग किया जा रहा है।

ऐसा पढ़ना आपके स्मृति जगत तक भी नहीं पहुंच सकता। तो आत्मसात तो कैसे हो पाएगा! ऐसे वांचन से आत्मोन्नति और शांति कैसे घटित होगी? जब पुस्तक का उपयोग ही मूर्छित होने के लिए हो रहा हो तब ध्यान की बात तो बहुत दूर रही।

परीक्षा के हेतु से किया गया अध्ययन ज्यादा से ज्यादा कुछ दिनों के लिए आपकी स्मृति बन सकता है। क्योंकि वहाँ हेतु ही परीक्षालक्षी कुछ बातों को याद रखने का है और याद रखके उत्तरवही पर उतार देना है। वहाँ कोई ज्ञान और आनंद का उद्देश्य नहीं होता।

कभी कभी भाषणबाजी के लिए भी पढ़ा जाता है, वह भी क्षणिक है। रटे हुए शब्द शब्द-ब्रह्म नहीं बन सकते ठीक रटे हुए राम नाम की तरह।

बहुत से लोग मैंने देखे हैं; पूरे दिन रटते रहते हैं माला लेकर मंत्रों को, भगवान के नाम को, परंतु भगवान से कोसों दूर होते हैं।

स्कूल-कॉलेजों में प्राध्यापकों को भी विद्यार्थियों के लिए पढ़ना पड़ता है। मेरी दृष्टि से यह पढ़ना सुंदर है। लेकिन जब आपका शिक्षक उस पढ़ाई को अध्ययन की भूमिका तक ले जाए तब उसका भी प्रबुद्धत्व में प्रवेश हो जाता है। और ऐसे अध्यापक विद्यार्थियों को भी उस अवस्था तक पहुँचा सकता है।

अध्यापक का तो अर्थ ही होता है – अध्यापन और अध्ययन कार्य करने वाला। और प्राध्यापक का अर्थ है जो विशेष रूप से अध्ययन शील है। और अध्यापन कार्य सम्पन्न करता है। अर्थात् विद्यार्थियों को सही अर्थ में पढ़ाते हैं। परंतु अध्ययन के अभाव में अध्यापन क्षमता विकसित कहाँ से होगी?

आज वास्तविकता कुछ और है। नालंदा विद्यापीठ के प्रधानाचार्य सरहपा बौद्ध सम्प्रदाय की वज्रयान धारा के चौरासी सिद्धों में से एक हुए, जिन्होंने सहज ध्यान का एक मार्ग चलाया। आज वह ध्यान की शाखाओं में 'सहज मार्ग' से प्रसिद्ध है। ऐसे प्राध्यापक बहती हवा का रुख बदल सकते हैं।

अध्ययन से समाधि तक पहुंचने वाले प्राध्यापक का प्रभाव अलग ही होता है। ऐसे प्राध्यापक कोई विरले ही होते हैं। ऐसा व्यक्ति जब पढ़ाना शुरू करेगा तब वह केवल रोटी या प्रमाणपत्र लक्षी पढ़ाई नहीं होगी परंतु एक अर्थ में छात्र पर सीधा शक्तिपात होगा।

उस शक्तिपात का माध्यम कोई विषय, कोई शास्त्र या कोई शाखा भले हो परंतु पढ़ते पढ़ते छात्र का अंतरजगत कुछ इस तरह से रूपांतरित हो जाएगा कि कालेज से निकलकर वह केवल स्नातक या अनुस्नातक न रहकर एक विशेष चेतना के रूप में खिलने लगेगा।

राम और कृष्ण में पड़े हुए बीजों को श्रेष्ठ प्राध्यापकों ने ही खाद, पानी और माहौल दिया था। उस जमाने में उन्हें ऋषि और गुरु कहते थे। आज व्याख्याएं बदल गई हैं। उस वक्त गुरुजन शिष्य के सर्वांगी विकास पर लक्ष्य देते थे। उस जमाने में अध्यापन का कार्य स्वैच्छिक और गुरुधर्म के निर्वाह के लिए गौरव के साथ होता था। आज नौकरी और ट्यूशन बन गया है। ऐसे माहौल में अध्ययन ध्यान कैसे बन पाएगा?

खैर! मुझे आज की शिक्षा प्रणाली के विषय में अभी ज्यादा बात नहीं करनी है परंतु अध्ययन के संदर्भ में कुछ सच्चाईयाँ अवश्य बतानी हैं। ताकि आपका अध्ययन भी ध्यान बन जाए।

एक दूसरी बात आजकल कागज़ और कलम का स्थान टाईपराईटर और कम्प्यूटर ने ले लिया है। फिर भी मैं कहूंगी कि अध्ययन तो अध्ययन है।

किसी माध्यम के जरिए आप उसे एक ध्यान विधि बना सकते हैं, माध्यम कोई भी हो, जरूरी है आपका उसमें खो जाना।

जब पढ़ाई और पढ़ने वाला – ऐसा द्वैत मिट जाता है तब सिर्फ सत्य बच जाता है। वह है अध्ययन का सत्य और वही है परम ज्ञान की उपलब्धि।

मेरा एक शिष्य है। कभी कभी मैं घंटों तक उसे डिक्टेड देती रहती हूँ; मैं बोलती जाती हूँ वह टाईप करता रहता है। कभी कभी महीनों तक हमारा अध्ययन कार्य इस ढंग से चलता रहता है। आठ दस दिन के बाद मैं उसमें अचानक बदलाव देखती हूँ, उसे कार चलाने का बड़ा शौक है। परंतु आठ दिन के अध्ययन के बाद मैं उसे कहती हूँ जा बेटा, कार लेकर बाजार हो आ। आश्रम के कुछ काम निपट कर आ जा। कल फिर से बैठेंगे पढ़ने को। तब वह कहता है कि माँ! प्लीज़ मुझे मत भेजो बाजार में। फिर भी आपकी आज्ञा है तो चला जाऊंगा, लेकिन मुझे आपके साथ पढ़ाई में रखो ना! और काम किसी और को दे दो तो ज्यादा अच्छा।

मुझे ऐसे जवाब की ही प्रतीक्षा रहती है। और जब जवाब आ जाता है तब मैं जान लेती हूँ कि वह एक अलग व्यक्ति बोल रहा है। वह भाषा एक टाईपिस्ट की नहीं है, कम्प्यूटर चलाने वाले की नहीं है, यह भाषा एक रूपांतरित चेतना की है। जिसका डिक्टेड के दौरान सत्संग

सुनते सुनते, टाईप करते करते भी, शब्द जगत में चलते चलते भी एक दूसरे ही जगत में प्रवेश हो जाता है।

और एक बार वहाँ की झलक जिसको प्राप्त हो जाती है वह भीतर से संतुष्ट हो जाता है। वह जगत एक ऐसा जगत है कि वहाँ मनुष्य को किसी चेंज की इच्छा नहीं होती। वह कभी बदलाव नहीं परंतु एक ही अनुभूति की गहता चाहता है बार बार।

अध्ययन से मिली हुई शांति और एक विशिष्ट अवस्था को कोई समझदार आदमी हरगिज गंवाना नहीं चाहेगा। वह तो बार बार मुड़ मुड़कर वापस लौट आता है अध्ययन ध्यान के शाश्वत माहौल में। शाश्वत माहौल इसलिए कह रही हूँ कि वे क्षण शाश्वतता प्रदान करते हैं।

ऑफिस, बाजार और नौकरी में आदमी को किसी विशेष गहनता का अनुभव नहीं होता, हो भी नहीं सकता। आप भले कार्य को पूजा बनाना चाहें तो भी संभव नहीं। क्योंकि वहाँ आपकी कोई स्वतंत्रता नहीं है। आपके बनाए हुए माहौल को बिगाड़ने के लिए वहाँ दस लोग तैयार हैं। ऐसा वातावरण कैसे दे पाएगा आपको एक शाश्वत माहौल!

अध्ययन की क्षणों में आपका एक स्वतंत्र माहौल बनता है, वहाँ आप धीरे धीरे पूरी तरह से बदल जाएंगे।

याद रहे! एक अध्ययनशील मनुष्य और विश्वविद्यालय के पदवीधारी व्यक्ति में बहुत फर्क दिखेगा।

मेरे कई साधक ऐसे हैं जो बहुत कम पढ़े हैं। उन्होंने ऐकेडैमिक शिक्षा बहुत कम ली है, उनके पास किसी महाविद्यालय के कोई विशेष प्रमाणपत्र नहीं हैं फिर भी वे अध्ययनशील हैं।

मैंने महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों के स्नातक, अनुस्नातक और प्रोफेसरों को भी देखा है, परंतु दोनों में बहुत फर्क दिखता है। अध्ययनशील व्यक्ति की पढ़ाई सम्यक जीवन और विवेकपूर्ण वाणी, वर्तन तथा व्यवहार से खिल उठती है और केवल पढ़े-लिखों की पढ़ाई तनख्वाह के रूप में बाहर आती है। जो एक अच्छी मशीन भी कर सकती है। ऐसे प्राध्यापकों के सानिध्य में छात्र अध्ययन ध्यान को कभी भी उपलब्ध नहीं हो सकता है।

अगर प्राध्यापक के पास ज्ञान और ध्यान की अनुभूति है तो कभी कभी अभ्यासक्रम के उपरांत की बातें भी विद्यार्थी को ध्यानस्थ कर सकती हैं।

प्रिय साधको!

अगर आपकी रुचि अध्ययन में है तो आप उसे बनालो ध्यान का विषय। समग्रता से अध्ययन में डूबते डूबते अनुभव करो कि भीतर क्या हो रहा है? प्ररंभ में तो अध्ययन सामग्री से मन और बुद्धि प्रभावित होंगे। कभी कभी आपकी धारणा के विरुद्ध किसी शास्त्र या ग्रंथ ने कुछ कह दिया, आपके संस्कार के विपरीत कोई निवेदन आ गया तो आपका मन और मस्तिष्क उसके विरोध में भी खड़े रह जाएंगे।

परंतु मैं कहती हूँ कि आप किसीके पक्ष विपक्ष में मत जाना। किसी भी प्रेरणाप्रद पुस्तक को लेकर अहेतुक बैठ जाओ। बेइरादा पढ़ना सीखो। ज्ञान पाने के लिए नहीं उठाना पुस्तक। सारे ग्रंथ जागने के लिए हैं। पुस्तकों में से अगर ज्ञान मिलता तो दीमक भी प्रबुद्ध बन जाती।

सारे प्रकाशक, मुद्रक एवं पुस्तकों की मार्केटिंग करने वाले हो जाते ज्ञानी। परंतु लाखों वर्ष में कभी ऐसा नहीं हुआ। मेरी दृष्टि से जागना ही सच्चा ज्ञान है।

ज्ञान बुद्धि की खोज नहीं है। वह एक अस्तित्वगत खोज है। ज्ञान कभी बुद्धि में से नहीं आता है परंतु ज्ञान बुद्धि को सत्य से सजाता है, संवारता है।

ज्ञान एक अस्तित्वगत खोज और अनुभव है। जब आप अपने समग्र अस्तित्व को उड़ेल देंगे किसी अध्ययन के विषय में तब एक दिन अचानक आंतरजगत अपनेआप ज्ञान से भर जाएगा। मनुष्य के मस्तिष्क में जो ज्ञान घटता है वह लौकिक है, वह बाजारू होता है। ज्यादा से ज्यादा आप उसे व्यावहारिक ज्ञान कह सकते हैं। परंतु जो अंतर में उदित होता है वह ज्ञान वास्तविक है। रूपांतरण वहाँ से घटित होता है।

तो अब बैठ जाओ किसी भी प्रेरणापूर्ण ग्रंथ को लेकर जिसकी भाषा आप जानते हैं। उतरते जाओ उसके भीतर, पढ़ते जाओ... पढ़ते जाओ, कुछ बातें समझ में ना भी आए तो उसकी चिंता मत करना। अगर जिज्ञासा तीव्र है तो बार बार पढ़ो। पुनरावर्तन करो, उस क्रिया को विधि की तरह लो।

आपका पढ़ना जब अध्ययन बन जाएगा तब कठिन बातें अपनेआप समझ में आने लगेंगी। वह आपके लिए सरल बन जाएंगी। आपकी अतिमनस शक्ति उसे समझ लेंगी। वह सत्य होगा, जिसे समझने में शब्द अधूरे उतर रहे थे, छोटे पड़ रहे थे, भारी लग रहे थे; अचानक सारा भार अदृश्य हो जाएगा। और वह निर्भार अवस्था ही निर्विचार अवस्था की परम प्राप्ति बन जाता है।

अगर आपको लिखने में रुचि है तो आपके किसी प्रिय विषय को लेकर लिखना आरंभ करो। लिखते जाओ... लिखते जाओ। उसे छपने की, उसके प्रचार की आसक्ति को छोड़कर लिखते रहो। जिससे आप निर्भर होकर लिख पाएंगे।

भाषा की बेड़ियों में ज्यादा मत बंधना। व्याकरण की बहुत फिक्र मत करना। कर्ता, कर्म और क्रियापद को अनुक्रम में रखने की चिंता भी मत करना। क्योंकि वह चिंता आपके भीतर से आते हुए प्रवाह में विक्षेप कर सकती है। ऐसी चिंता आनंद के जगत में प्रवेश करने में आपके लिए रुकावट बन सकती है।

प्यारे साधको!

शेक्सपीयर कुछ खास पढ़ा नहीं था। उसके नाटकों को समझना एक पंडित के लिए बहुत कठिन हो जाता है क्योंकि उसमें व्याकरण की कोई लिंक नहीं मिलती। परंतु एक सहृदय पाठक उसका मज़ा ले सकता है।

पंडितों के पास सशक्त मस्तिष्क होता है और साहित्यप्रेमियों के पास हृदयपक्ष बलवान होता है। व्याकरण की दृष्टि से शेक्सपीयर के नाटक निम्न कोटि के होने पर भी नाटक के विश्व में उत्तम कक्षा के सिद्ध हुए हैं।

प्यारे साधको!

लिखते वक्त अक्षरों की भी ज्यादा चिंता मत करना। आपको किसी सुलेखन स्पर्धा में नहीं बैठना है। अक्षर अगर सुंदर हैं तो बहुत अच्छा परंतु उसे चिंता का विषय मत बनाना। क्योंकि वह चिंता भी आपके अंतरप्रवाह में बाधा डाल सकती है। संभव है कि अंतरचेतना आपको शीघ्रता से विविध विचारों के रूप में सत्य को अस्खलित रूप से भेज रही है और आप अगर सुंदर अक्षर लिखने के आयास प्रयास में व्यस्त हैं तो आते हुए अस्खलित प्रवाह को न्याय नहीं दे पाएंगे। और विचार खो जाएंगे।

अध्ययन को बाहर से सजाने की जरूरत नहीं है। वह तो एक ऋषि जैसा है, जो दाढ़ी, मूंछ और जटा में भी सुंदर लगते हैं। किसी ऋषि को आपने कभी मेकअप में देखा है?

कुछ विद्यार्थियों को मैंने देखा है कि वे उनकी नोटबुकों की सजावट में ही व्यस्त रहते हैं और अध्ययन हाथ से निकल जाता है।

अध्ययन आपको भीतर से सजाएगा, जब वह ध्यान रूप बन जाएगा तब। लिखते जाओ लिखते जाओ.... कुछ समय के बाद आपको अनुभव होगा कि वह आपका लिखा हुआ है ही नहीं। वह केवल अक्षर आपके भले हों परंतु किसी और ने ही लिखा है। वहाँ, जो कोई 'और' है, वह 'कोई और' ही आपका वास्तविक स्वरूप है।

जबतक मन के विचार उतरेंगे तब तक आप नहीं आपका मन लिख रहा था। जब तक मस्तिष्क में जो स्मृतियाँ पड़ी थीं वह उतरें तब तक समझना कि आपकी बुद्धि इस्तेमाल कर रही थी स्मृतियों का। जब तक आपकी लिखावट से किसीको प्रभावित करने का इरादा रहेगा तब तक समझना कि आपका अहंकार लिख रहा है।

परंतु जब कभी न सोची, न जानी, न समझी और न चाही बातें उतरने लगे आपकी लिखावट में, तब जानना कि आपके वास्तविक रूप की हाजरी हो गई है।

उस हाजरी का अचानक अहसास होते ही मन सुन्न सा हो जाता है। वह अवस्था ही सफलता की क्षण है। वह क्षण जितनी लंबी चले उतनी समाधि समझना। उस क्षण पर बने रहो। फिर कोई जल्दी न करो कुछ और लिखने की। यात्रा की मंजिल आ गई। थोड़ा विराम कर लो उस अंतरजगत में।

अध्ययन के द्वारा आप कब अपने भीतर उतर गए, कब लिखना या पढ़ना बंद हो गया, आप गद्गदित, प्रसन्न और अवाक हो गए जिसका आपको भी पता नहीं चला तब समझना वह लिखना और पढ़ना सार्थक हो गया। वह केवल अध्ययन नहीं परंतु अध्ययन ध्यान बन गया।

शास्त्र किसने लिखा है यह गौण है। उसमें सत्य की झलक कितनी है यह महत्वपूर्ण है। अगर आपका ही लेखन पढ़कर आपको उपरोक्त अनुभव हो रहा है तो उसे बार बार पढ़ो, बार बार डूबो उस रस के महासागर में।

यह अवस्था कोई क्रमशः नहीं घटेगी। वह एक अक्रम प्रक्रिया है। लिखते, पढ़ते, सुनते या वक्तव्य देते वक्त कभी भी घट सकती है। आप प्रारंभ मध्य या अंत में कहीं से भी उस अंतरजगत में अचानक पहुंच जाते हो।

यह अवस्था बहुत प्यारी है। बचपन से लेकर आजतक उस अवस्था में मैं सराबोर हूँ। यही अध्ययन की सही उपलब्धी है जिसे आप अक्षर समाधि भी कह सकते हैं।

अध्ययन करते करते आप कब चले गए अपने भीतर उसका आपको पता तक नहीं चलेगा। परंतु धीरे धीरे जब बाहर के जगत में आना पड़ेगा तब एक विक्षेप जैसा लगेगा, उस विक्षेप को भी देखो।

बाहरी अस्तित्व के लिए भाव समाधि में से बाहर आना जरूरी है तो धीरे धीरे देखो कि चेतना कैसे मुड़ रही है बाहर की तरफ। होने दो

क्रियाओं, को इन्द्रियों को करने दो अपना काम परंतु दृष्टा को जगाए रखना।

आप बिलकुल ध्यान से देखते रहना, भीतर से बाहर की ओर बनती हुई अवस्थाओं को। अध्ययन में सधे हुए मनोयोग के बाद घटित होती क्रियाएं एवं व्यवहार बिलकुल भिन्न होंगे। वहाँ कोई फड़फड़ाहट, कोई जल्दी कोई आक्रमण नहीं होगा। क्रियाएं घटेंगी भीतर की शांति के प्रभाव में और तब उसकी सुवास और असर भी अलग होंगे। एवं परिणाम भी अलग होगा।

इतने सत्संग के बाद मैं चाहूँगी कि मेरे साधको का पढ़ना सिर्फ वाचन नहीं परंतु सच्चा अध्ययन बनेगा और धीरे धीरे अध्ययन ध्यान बन जाएगा।

इस सत्संग के द्वारा मैं आपको कोई विशेष शिक्षा देना या आपके ऊपर कुछ भी थोपना नहीं चाहती हूँ परंतु मैंने मेरे अनुभव के आधार पर आपको अध्ययन के संदर्भ में एक नई दृष्टि देने का प्रयास किया है। सही दृष्टि से देखना सीख लेंगे तो किसी भी चीज़ को आप ध्यान बना पाएंगे। अब मुझे अध्ययन ध्यान की ओर।